# संस्कार चन्द्रिका ।

अर्थात्

## 'संस्कारविधि' की टीका ।



लेखक

पं० भीमसेन शर्म्मा ( आगरा निवासी )

और

म० आत्माराम, (अमृतसरी)

पं० केशवराम स्वामी द्वारा "श्री स्वामी प्रेस"
देहरादून में मुद्रित हुआ ।

मूल्य १)

ओ३म्



# संस्कार चन्द्रिका

अर्थात्

महर्षिदयानन्दप्रणीत "संस्कार विधि" के
संस्कृतभाग का अनुवाद तथा व्याख्या।

( जिसको )

श्रीयुत पण्डित भीमसेन शर्म्मा, आगरा निवासी,
संस्कृतमुख्योपाध्याय, गुरुकुल, ज्वालापुर
(जि० सहारनपुर)

तथा

रा० रा० आत्माराम राधाकृष्ण, एजुकेशनल इन्स्पेक्टर,
(डिप्रेस्ड क्लास) स्कूल्स बड़ोदा राज्य, बड़ोदा-

ने

बना कर प्रकाशित किया।

पं० केशवराम स्वामी के प्रबन्ध से "श्री स्वामी यन्त्रालय"
देहरा दून में मुद्रित।

प्रथमावृत्ति २००० | संवत् १९७० वि० | मूल्य २) रु० डाक व्यय पृथक्



यह टाइटिल पेज गढ़वाली प्रेस देहरादून में छपा।

# विषय सूची

इति ॥

ओ३म्

# भूमिका ।

यह संसार अनेक आश्चर्य पदार्थों से परिपूर्ण है । इस की विचित्र २ लीलाओं को देख कर बुद्धि दङ्ग हो जाती है । इसमें सहस्त्रों अद्भुत २ घटनाएँ हुईं, होंगी और हैं । इस पञ्चमहाभूतमय विचित्र नाटक का सूत्रधार न जाने क्या २ खेल खेला करता है ? इस नाटक को देखते २ लोग थकते नहीं, किन्तु अधिकाधिक इस की रमणीयता बनाने में ही उत्सुक रहते हैं ।

महाभारत से प्राचीन भारत, प्रवृत्ति मार्ग में खूब निष्णात हो कर जिन २ विस्मय कारक कृत्यों को कर चुका है, उनका इस समय अनुमान करना भी कठिन है, इस के बचे बचाए खण्डहरों से इसकी कारीगरी, इस की उच्चता का पता लग सकता है । प्राचीन भारत ने बाह्य संसार को ही नहीं देखा किन्तु संसार के अभ्यन्तरीय आश्चर्योत्पादक यावत् पदार्थों के दर्शन कर लिए ।

इन सब बातों का एक कारण था, बिना कारण के कोई कार्य नहीं होता, उस उन्नति का भी तो कोई कारण होना चाहिए ! क्रिया के लिए विज्ञान की आवश्यकता है, विज्ञान स्वतः नहीं मिलता, उसे कोई देने वाला चाहिए अंकुर रूप से तो अवश्य ही देने वाला चाहिए, सृष्टि की आदि में अल्पज्ञ परिमित बुद्धि वाले प्राणियों को, सिवाय उसके जिसने सूर्य को दिया, पृथिवी को दिया, वायु को दिया, अग्नि को दिया और कौन हो सकता है ? सब जगत् को देकर भी यदि वह विज्ञानशक्ति हमें नहीं देता तो निःसन्देह यह संसार अन्धकारमय प्रतीत होता ।

विज्ञान एक प्रकार का प्रकाश है वह मलिनान्तःकरणों में नहीं प्रकाशित हो सकता, सूर्यकी किरणें मलिन पत्थर पर नहीं चमकतीं, चमकती हैं स्वच्छ दर्पण पर । बिना अधिकारी के अधिकार नहीं दिया जाता, यदि अधिकार देने वाला पूर्णज्ञानी हो निर्भ्रम बोधसंपन्न हो तो फिर वह अनधिकारी को अधिकार देही नहीं सकता, अधिकारियों में भी जो विशिष्ट उचित समझे जायँ उन्हें ही नियुक्त किया जाता है, यही कारण है कि अग्नि, वायु, आदित्य, अङ्गिरा नामक चार ऋषियों को ही, सृष्टि के

आदि में एक प्रकार का प्रकाश दिया उसी प्रकाश का नाम "वेद" है। विस्तर भय से अधिक न लिख कर इतना लिखना आवश्यक समझते हैं कि मनुष्य मात्र के हित की प्राप्ति और अहित का परिहार बतलाने वाला वेद है, यदि विज्ञान काण्ड का कर्मकाण्ड में अन्तर्भाव मान लिया जावे तो मुख्यतः वेद में तीन विषय मानने पड़ते हैं:—(१) कर्मकाण्ड (२) उपासनाकाण्ड (३) ज्ञानकाण्ड।

संसार के यावत् शुभ कर्म, कर्मकाण्ड में सन्निविष्ट हैं उनका बीजरूप से उपदेश वेदों में विद्यमान है, यहाँ तक आज्ञा है कि किसी अवस्था में भी स्वस्ववर्णाश्रमोचित धर्म कर्मों का परित्याग न करे "कुर्वन्नेह कर्माणि जिजीविषेच्छतꣳ समाः" यजु० अ० ४० मं० २।

अर्थात् हे जीव कर्मों को करता हुआ ही सौ वर्ष पर्यन्त जीने की इच्छा कर। निश्चेष्ट आलसी होकर रहना मन्त्र का आशय है। कर्म शब्द से वे कर्म विवक्षित हैं जिनके द्वारा अपनी सन्तुष्टि के साथ अन्यों का उपकार हो, अपनी भलाई के लिए तो सब ही की कुछ न कुछ स्वभावतः प्रवृत्ति होती ही है उस के लिए उपदेश की विशेष आवश्यकता नहीं।

कर्मों के दो भेद हैं (१) सकाम और (२) निष्काम। ब्रह्मचारी और गृहस्थों को सकाम कर्म करने चाहिएँ और वानप्रस्थ तथा संन्यासियों को निष्काम। कर्मों को मुक्ति का साक्षात् साधन चाहे कोई न माने परन्तु परम्परया मुक्तिसाधनता, भगवच्छङ्कराचार्यादि सब को अभिप्रेत है, क्योंकि बिना वैदिक कर्मयोग के अन्तःकरण की शुद्धि नहीं हो सकती, राग द्वेषादि की निवृत्ति नहीं हो सकती और बिना ऐसा हुए उपासना-ईश्वर की निरन्तर भक्ति का अधिकारी नहीं हो सकता और बिना तादृश भक्तिके ब्रह्मतत्त्व साक्षात्कार कहाँ और बिना ब्रह्मस्थ होने के सांसारिक दुःखों की अर्थात् आध्यात्मिक, आधिभौतिक, आधिदैविक दुःखों की निवृत्ति कहाँ? प्रिय वाचकवर्ग! वैदिक कर्मयोग, ब्रह्मप्राप्तिरूप उच्च-

---

धातुवैषम्यनिमित्तक ज्वरादि और काम, क्रोध, लोभ, मोह, भय, ईर्ष्या, विषादादि "आध्यात्मिक" कहाते हैं। मनुष्य, पशु, सर्पादिकों से होने वाले दुःखों का नाम "आधिभौतिक" है। वायु, वर्षा, गर्मी, सरदी, आदि के निमित्त से होने वाले दुःख "आधिदैविक" कहलाते हैं।

पद पर आरूढ होने के लिए पहली सीढ़ी है। भगवान् मनु ने लिखा है:—
"अहिंसयेन्द्रियासङ्गै वैदिकैश्चैव कर्मभिः । तपसश्चरणैश्चोग्रैः साधयन्तीह तत्पदम्" । अर्थात्-किसी प्राणी को पीड़ा न पहुँचाने से, इन्द्रियों को विषयों में आसक्त न करने से, वैदिक-वेदप्रतिपाद्य कर्मों के अनुष्ठान से, उग्र स्वाध्याय सत्यभाषणादिरूप तपों से, उस ब्रह्मपद को साधक लोग सिद्ध कर पाते हैं॥ अहिंसा आदि को जैसे ब्रह्मप्राप्ति के प्रति वा दुःख निवृत्ति के प्रति कारणता है वैसे ही वैदिक कर्मों को भी कारणता है । वैदिक कर्मों के सैकड़ों भेद हैं, वे विशेष अवस्थाओं में किये जा सकते हैं । परन्तु द्विजमात्र को अपने शरीर और मन की शुद्धि के लिए १६ संस्कार तो अवश्य कर्तव्य हैं "कार्यः शरीरसंस्कारः पावनः प्रेत्य चेह च" मनुः । परलोक और इसलोक में पवित्रता देने वाला, शरीर का-स्थूल और लिङ्ग शरीर का, संस्कार करना चाहिए । कैसे करना चाहिए ? किन वस्तुओं से करना चाहिए ! इन सब बातों का विचार प्राचीन महर्षिगण, स्वस्वबुद्ध्यनुसार कर गए हैं इन्हीं के विचारित ग्रन्थों का नाम "गृह्यसूत्र" वा "कल्प" है॥

"गृह्यसूत्र" बनाने वाले आचार्य पृथक् २ समयों में हुए हैं, उन्होंने वेद और ब्राह्मण ग्रन्थों में १६ संस्कारों को देखकर संस्कारपद्धतियों की कल्पनाएँ की हैं, मुख्य २ बातों में भेद न होने पर भी साधारण बातों में कहीं २ भेद दिखलाई देता है, मुख्य २ बातों में किसी का भी मत-भेद नहीं ।

उन्नीसवीं शताब्दी के सब से बड़े संशोधक, वेदों के अपूर्व व्याख्याता यतिवर श्री १०८ स्वामी दयानन्द सरस्वती जी महाराज ने सब गृह्यसूत्रों तथा अन्यान्य ग्रन्थों को देख कर, षोडश संस्कारों की जिन को समस्त वैदिकधर्माचार्यों ने स्वीकार किया है, संसार में प्रवृत्ति करने के लिए, गृह्यसूत्रादिकों के मिलावटी वा अनुपादेयभाग को छोड़ कर, १६ संस्कारों की रीति आदि का प्रदर्शक एक ग्रन्थ बनाया उसीका नाम "संस्कार विधि" है ।

बड़े २ नास्तिकों का अपने अपूर्व युक्तिजाल से मुखमर्दन करने वाले निरर्थक और भ्रम विपर्यय दोषोंसे संवलित बातों का समूलोन्मूलन करने

वाले स्वामी दयानन्द जी का और प्राचीन ऋषिगण का १६ संस्कारों को मानना और प्रचरित करना ही हमारे लिए तो उनकी युक्ति युक्तता में एक युक्ति है परन्तु जो सज्जन आप्तवाक्यों पर विश्वास नहीं रखते, जिनको युरोपीय महात्माओं के वाक्य ही वेदवाक्य हैं, जिन का सायँस ही सर्वस्व है, जो भारतीय किसी मृत महात्मा की कहीं हड्डी मिलजावें तो उसके प्राप्त करने के लिए तो बड़ी उछल कूद मचावें परन्तु तपोधन वेदज्ञ ऋषियों के बतलाए आत्मोन्नत शिखासूत्र ग्रहण का परित्याग कर अपने को पूरा नेचरिया दिखलावें उन को मार्ग पर लाना और उन के परमगुरु युरोपीय महात्माओं के वाक्यों से, भारतीय ऋषियों के वाक्यों का समर्थन करना, व्याख्यानवाचस्पति, सुप्रसिद्धवाग्मी स्वतन्त्रप्रज्ञ तार्किक शिरोमणि प० आत्माराम जी एज्युकेशनल इन्सपेक्टर ( बड़ौदा स्टेट ) जैसों का ही काम है । आप देखेंगे कि किस खूबी के साथ-किस योग्यता के साथ उक्त महाशय जी ने संस्कारों के महत्त्व को दर्शाया है ।

इस बात की आर्य्यसज्जनों को बहुत दिनों से बड़ी अभिलाषा थी कि "संस्कारविधि" की कोई उपयुक्त टीका हो और उस के ऊपर होने वाली शङ्काओं का जवाब दिया जाय । गुरुकुल-महाविद्यालय ज्वाला-पुर ( हरिद्वार ) के महोत्सव में जब उक्त मास्टर जी पधारे थे उस समय बहुत से प्रतिष्ठित आर्य सज्जनों ने मास्टर जी से यही प्रार्थना की थी इस आवश्यक और बड़े कार्य को सम्पादन करने के पूर्व संस्कारविधि में आए हुए मन्त्रों ( वेदमन्त्र तथा ब्राह्मणादि के वाक्यसमूह गौण मन्त्रों ) का अर्थ करने के लिये, मास्टर जी ने मुझे नियुक्त किया । मैं ऐसे ज़िम्मे-वारी के काम को जिस में विशेष पाण्डित्य की आवश्यकता है लेना नहीं चाहता था, क्यों कि न मुझ में लिखने की शक्ति, न मन्त्रार्थ करने की योग्यता ! कहाँ गूढ़ाशय वेदादि के मन्त्र ! और कहाँ मेरी तुच्छ बुद्धि ! परन्तु प्रेमवश मास्टर जी की आज्ञा मानने में मुझे सङ्कोच नहीं हुआ और जैसा मन्त्रार्थ मुझ से हो सका वैसा आप के संमुख प्रस्तुत है । संस्कारविधि में आए हुए मन्त्रादिकों के अर्थ करने के पूर्व मुझे यह आव-श्यकता हुई कि संस्कारविधि की लिखित क्रियाएँ प्राचीन आर्षग्रन्थों के अनुकूल हैं ? वा स्वयं कल्पित हैं ? इस बात का पता लगाने के लिए

और मन्त्रों के अर्थ करने में सहायता लेने के लिये (१) पारस्कर गृह्यसूत्र ( २ ) आश्वलायन गृह्यसूत्र ( ३ ) कुमारिलभट्टप्रणीत आश्वलायन गृह्य-कारिका ( ४ ) गोभिलीय गृह्यसूत्र ( ) सामवेद मन्त्रब्राह्मण ( ६ ) तैत्ति-रीयारण्यक ( ७ ) आपस्तम्बधर्मसूत्र ( ८ ) निघण्टु, निरुक्त ( ९ ) चारों वेद, सायणाचार्य, स्वामी दयानन्द, उव्वट आदि के भाष्य सहित ( १० ) मानव गृह्यसूत्र और आपस्तम्ब ... इत्यादि को इकट्ठा किया। इन में से बहुत सी पुस्तकें ... तथा डाक्टर कल्याणदास जे० देसाई, बी० ए० ... एम० ... मन्त्री ... विद्यासभा मुम्बई और वैद्याचार्य ... श्री ... जी ... आयुर्वेदीय ग्रन्थ माला ... मुम्बई की कृपा ... थीं; इस लिए इन सज्जनों को मैं कृतज्ञतापूर्वक धन्यवाद देता हूं ... मिलान करने पर मालूम हुवा कि जिन विधियों का संग्रह ... किया है वे सब आर्षग्रन्थों में विद्यमान हैं, स्वामी जी ... इस लिये सारभूत बातें उन्होंने सब रखदी हैं, और मैं कौनर बात ... इस का पता बड़े परिश्रम से लगाकर हमने स्थान निर्देश ... किसी को यह भ्रान्ति न होगी कि यह निर्मूल है। २ ... जगह ... हैं जहां ... विधि का परिश्रम करने पर भी हमें पता नहीं ... कि यह वाक्य किस ग्रन्थ से संगृहीत हैं, परन्तु आप्तोक्त होने से उन वाक्यों को भी प्रामाणिक समझ लेना चाहिए, विशेष अन्वेषण करने पर उन का भी मूल मालूम हो सकता है।

यतिवर स्वामी दयानन्दजी ने आर्षग्रन्थों के शुद्ध रूपसे मुद्रणार्थ और उनके प्रचारार्थ "वैदिक प्रेस" स्थापित किया था जो इस समय अजमेर में है। वैदिक प्रेस में यह संस्कार विधि ... बार छपी है, परन्तु दुःख के साथ लिखना पड़ता है कि वह कई स्थानों में बराबर अशुद्ध छपती रही पर किसी ने भी ध्यान नहीं दिया। उदाहरण के लिए हम केवल तीन स्थानों का निर्देश करते हैं :—

(१) "चतस्रोऽवस्थाः शरीरस्य वृद्धि यौवनं सम्पूर्णता किञ्चित्परिहाणिश्चेति। तत्राषोडशाद्वृद्धिः। आपञ्चविंशतेर्यौवनम्। आचत्वारिंशतः सम्पूर्णता। ततः किञ्चित् परिहाणिश्चेति॥" अर्थः—सोलहवें वर्ष से आगे मनुष्य के शरीर के सब धातुओं की वृद्धि और पच्चीसवें वर्ष से युवावस्था का आरम्भ, चालीसवें वर्ष में युवावस्था की पूर्णता अर्थात् सब धातुओं

की पूर्ण पुष्टि और उससे आगे किंचित् २ धातु वीर्य की हानि होती है (संस्कार विधि, पृ० ३३ ३४ गर्भाधान प्रकरण, वैदिक प्रेस में छठीवार मुद्रित) ।

मालूम नहीं यह किस ग्रन्थ का संस्कृत वाक्य है ! ऐसा ही पाठ फिर वेदारम्भ प्रकरण में लिखा है इतना भेद है कि इस में "आचतुर्विंशतेः" है वहाँ "आपञ्चविंशतेः" है । वहाँ के नीचे की भाषा देखने से यह पता लगता है कि यह सुश्रुतका पाठहै (शायद पाठभेद हो) परन्तु सुश्रुतमें (जो इस समय मिलता है) इसका कहीं पता नहीं ! और यह तो देखिए इस देह की ४ अवस्था हैं १६ वर्ष से आगे २५ वर्ष तक वृद्धि अवस्था, २५ से ४० तक युवावस्था फिर धातुओं की हानि ही होने लगती है फिर तीसरी सम्पूर्णताऽवस्था कहाँ रही ! हमने इस की जगह असली सुश्रुत का पाठ भाषासहित दे दिया है । आगे चलिए—

(२) गर्भाधान प्रकरण पृ० ३६ छठीवार मुद्रित सं० वि० में पाठ है:—

"जो पूर्व निन्दित ८ आठ रात्रि कह आए हैं इत्यादि" पूर्व निन्दित ८ आठ रात्रि कहाँ कह आए हैं ! केवल ६ रात्रियों को निन्दित कहा है । अस्तु, हमने संस्कृतानुसार भाषा ठीक करदी है ।

(३) पूर्वोक्त संस्कारविधि पृ० ५४ सीमन्तोन्नयन प्रकरण में ५ वाँ मन्त्र बड़ा ही अशुद्ध छपगया था, मन्त्र का आधा भाग ही उलटा होगया यह मन्त्र, सामवेद मन्त्रब्राह्मण का है, पण्डित श्रीसत्यव्रत सामश्रमी जी ने इसको सन् १८७३ में द्वैपायन प्रेस कलकत्ते में छपवाया था उस में भी वैसा ही गड़बड़ पाठ छपा था, यदि सामश्रमी जी की टीका नीचे न होती तो पाठ का शोधन करना हमें बहुत कठिन पड़ जाता । शायद उसी पाठ को देखकर संस्कारविधि का पाठ भ्रष्ट हुआ हो ! छः छः वार संस्कारविधि छपे और पाठ शुद्धि पर किसी का ध्यान न जाय ! अब हमने मूल ग्रन्थों से पाठों का मिलान करके जहाँ तक हम से हो सका है पाठ शुद्ध कर दिए हैं ।

निरुक्तकार का मत है कि "जो वेद को पढ़ता है पर उसके अर्थ से अनभिज्ञ है वह केवल भारहार पशु के तुल्य है, और जो अर्थज्ञ है वह कल्याण को प्राप्त होता है" संस्कारविधि में जिन पर मूलकारका शब्दार्थ वा भावार्थ कुछ नहीं है ऐसे क़रीब ४०० के लगभग मन्त्रादि हैं उन का

अर्थ साथ होने से निरुक्तोक्त दोष का भागी अब न होना पड़ेगा और उन के लेखानुसार कल्याण की उपलब्धि होगी ।

"संस्कारविधि" का अनुवाद गुजराती भाषा में हुआ है उसकी छपाई आदि का ढँग अनुवादक ने अच्छा रक्खा है परन्तु उस में भी कहीं २ त्रुटियाँ हैं । सब से पूर्व श्री० स्वामी जी ने सेठ केशव लाल निर्भयराम जी की सहायता से "एशियाटिक प्रेस" मुम्बई में संस्कारविधि छपाई थी उस की अनुपादेयता का हेतु, स्वामी जी ने अपनी भूमिका में स्वय ही लिखा है । मैंने उसे मँगाकर देखा तो उस में मुझे कुछ विशेष न मिला ।

ऊपर हम लिख आए हैं कि हम ने संस्कारविधिस्थ मन्त्रादि के अर्थ करने में इन ग्रन्थों की सहायता ली है । यदि ये ग्रन्थ हमारे पास न होते तो इस कठिन काम को हम कभी न कर सकते । अपनी समझ से व्याकरण, निघण्टु आदि के द्वारा जिन मन्त्रों के ऊपर किसी का भाष्य नहीं है उन मन्त्रादि का भी भाष्य कर दिया है और जहाँ कहीं अन्य आचार्यों का भाष्य मौजूद था उसे भी सर्वत्र ज्यों का त्यों रखना उचित नहीं समझा किन्तु अपने तौर पर उसके सहारे से पूर्ण किया गया है, प्रकरणादि वश से एक मन्त्र के अनेक अर्थ हो सकते हैं यह बात उन को विदित है जिन्होंने ऋग्वेदादि के सायणादिकृत भाष्यों को देखा है ।

सायणाचार्य ने "चत्वारिशृङ्गा०" ऋ० म० ४ अ० ५ सू० ५८ म० ३ इस मन्त्र की पाँच प्रकार की व्याख्या स्वीकार करके भी निरुक्तोक्त छठे प्रकार को स्वीकार किया है, फिर लिखा है " शाब्दिकास्तु शब्दब्रह्म परतया ००० व्याचक्षते, अपरे त्वपरतया, तत्सर्वमत्र द्रष्टव्यम्" ।

"चत्वारि वाक् परिमिता"० ऋग० म० १ अ० २२ सू० १६४ म० ४५ की व्याख्या में भी सायणाचार्य ने स्वीकार किया है कि यहाँ शाब्दिक वैयाकरण, याज्ञिक, तथा अन्यान्य, अन्य प्रकार से व्याख्या करते हैं । यह सब कुछ है पर मेरी समझ ही कितनी है । उस पर भी आधि व्याधि ग्रस्तता ! ऐसी दशा में मैं समझता हूँ, दृष्टिदोष से, वा प्रमादादि से एक नहीं, दो नहीं किन्तु कई त्रुटियाँ रह गई होंगी, जिन के लिए मैं आर्य विद्वन्मण्डली से केवल क्षमा न माँग कर प्रेमपूर्वक सूचना देने की अभ्यर्थना करता हूँ जिससे कि द्वितीयावृत्ति में, स्खलितदर्शक सज्जनों को धन्यवाद देकर ठीक कर दिया जावे ।

"अयुक्तमस्मिन् यदि किंचिदुक्तमज्ञानतो वा मतिविभ्रमाद्वा ।
औदार्य कारुण्य विशुद्धधीभिर्मनीषिभिस्तत्परिमार्जनीयम् " ।

इस के प्रकाशन का श्रेय श्रीयुक्त मा० आत्माराम जी को ही देना चाहिए क्योंकि यदि वे अपनी युक्तिपूर्ण उपवृत्ति वा हिन्दीभाष्य-व्याख्या लिखने का कष्ट न उठाते तो मैं शायद इसे कभी न लिखता। मेरी पूर्व इच्छा थी कि संस्कारों के कर्तव्य के ऊपर, एक उन की सप्रयोजनता सिद्ध करने के लिए छोटा सा लेख लिखूं, परन्तु जब उस कार्य को श्री० मास्टर जी ने स्वयं कर लिया तब मुझे लिखने की आवश्यकता नहीं रही। "हवन प्रत्येक संस्कार में क्या किया जाता है! छोटे बड़ों का सत्कार क्यों किया जाता है अमुक २ संस्कार में अमुक २ अवान्तरविधि का क्या फल है! साथ २ ईश्वरप्रार्थनापरक वा प्रयोजनीय वस्तु के गुणदोषदर्शक मन्त्रों का पाठ क्यों किया जाता है!" इत्यादि प्रश्नों का उत्तर स्वयं श्री० मास्टर जी ने दे दिया है।

हा! आर्य जाति, इतनी पतित हो गई कि उसे प्राचीन आचार्यों के स्पष्ट ही सभ्यताद्योतक और जातीयता की वृद्धि के द्योतक, और अपने अन्तःकरण की शुद्धि के दर्शक कर्मों पर भी सन्देह होने लग गया। "किन्तु दुःखमतःपरम्"।

अन्त में हम फिर इतनी प्रार्थना किये देते हैं कि जितना हम से हो सका "संस्कारविधि" का उपादेयता बढ़ाने में यत्न किया, परन्तु संशोधकों के दृष्टि दोष, असावधानता, व तथा प्रेस के कर्मचारियों की असावधानता से इसमें बहुत सी अशुद्धियां रह गई हैं। कहीं २ मात्राएं उड़ गई हैं, कहीं २ हेडिंग रखने आदि में भूल हुई है जिनके लिये क्षमा प्रार्थना के अतिरिक्त हम क्या कर सकते हैं! अस्तु, पाठक "शुद्धि पत्र" से मिलान कर के पढ़ें द्वितीयावृत्ति में सर्वाङ्ग सुन्दर बनाने की चेष्टा की जायगी।

अनुग्राह्य–भीमसेनशर्मा
मुख्याध्यापक–म० विद्यालय, ज्वालापुर,
O. R. R

ऐसी अशुद्धियां "शर्मा मेशीन प्रिटिङ्ग प्रेस मुरादाबाद" के छपे फार्मों में ही (जो "गर्भाधान" से लेके 'वेदारम्भ" संस्कार तक छपे हैं) रही हैं। "वानप्रस्थ" और "अन्त्येष्टि" संस्कार 'गढ़वाली प्रेस' देहरा दून में और शेष सब ग्रन्थ श्री स्वामी प्रेस' देहरादून में छपा है।

ओ३म् नमः ।

# भूमिका ।

## (श्री० म० आत्माराम जी लिखित)

वेद, विद्या वा यथार्थ ज्ञान का नाम है । विद्या के नाना भाग उपयोग के कारण होते हैं । युरोप में प्राकृतिक पदार्थ की विद्या को 'सायंस' कहते हैं । जब उस सायंस का उपयोग शिल्पादि में किया जाता है तब शिल्पशास्त्र को "आर्ट" (कर्म) बोधक विद्या कहते हैं । युरोप वालों को अभी जड़ प्रकृति का ज्ञान ही हुआ है, इसलिये उन के यहाँ ज्ञान [सायंस] और कर्म [आर्ट] दो काण्ड ही विद्या के पाये जाते हैं । जब उन को ब्रह्म का ज्ञान होगा तब तत्सम्बन्धी कर्मों के लिये तीसरा उपासना काण्ड माननाही पड़ेगा । जिसको "एक्सपीरियेंस" [अनुभव] कहते हैं वह ज्ञान की परिपक्व अवस्था का नाम है ।

वेद के जो ४ काण्ड, भिन्न २ उपयोग के कारण हैं उनके नाम ज्ञान, कर्म, उपासना और विज्ञान हैं । ज्ञान काण्ड में सर्वप्रकार के सायंस हैं । कर्मकाण्ड में सर्वप्रकार के उत्तम व्यवहार तथा सर्वहितकारी कला कौशल हैं । उपासना काण्ड में चेतन जीव सम्बन्धि विद्या तथा कर्मों का वर्णन है जो चेतन ब्रह्म की प्राप्ति के लिये मनुष्यमात्र को अनुष्ठेय हैं "विज्ञान काण्ड" एक्सपीरियेंस वा अनुभवात्मक ज्ञान वा संशयरहित वा परिपक्व ज्ञान का नाम है ॥

कई पण्डित तथा स्मृतिकार विज्ञान को ज्ञान के अन्तर्गत समझकर ज्ञान, कर्म और उपासना यह तीन ही वेदों के काण्ड मानते हैं । वास्तव में बात एक ही है किन्तु प्रयोग शैली में भेद है ॥

ज्ञानकाण्ड का दूसरा नाम विद्याकाण्ड, कर्मकाण्ड का दूसरा नाम यज्ञकाण्ड, और उपासना काण्ड का दूसरा नाम ब्रह्मभक्ति है । वास्तव में यह चारों काण्ड, एक विद्याकाण्ड के ही अन्तर्गत हैं इसलिये वेद कहने से चारों ही काण्डों का बोध होता है । सर्वप्रकार के सिद्धान्तों

का ज्ञानकाण्ड में समावेश हो जाता है। प्रत्येक मत वाले अपने २ सिद्धान्त रखते हैं और प्रत्येक मत वाला बड़े गौरव से यह कहता है कि हमारे ही मत के सिद्धान्त, विद्यामय और सत्य हैं। वैदिक धर्मी भी यही कहते हैं कि वेद मन्त्रों में जो २ विद्या वा सिद्धान्त दर्शाए गये हैं वे सब सत्य हैं वैदिक धर्मियों का यह कथनमात्र, किसी प्रकार अन्य मतों के उपदेशकों के कथन से बढ़कर नहीं हो सकता। यदि मतान्तरों के उपदेशकों से पूछा जावे कि आपके सिद्धान्त क्यों सत्य हैं? तो वे यह कहते हैं कि [१] हमारे बाप दादा ऐसा कहते चले आये हैं। [२] हमारी धर्म पुस्तक में लिखा है कि यह सत्य सिद्धान्तों का पुस्तक है। ( ३ ) हमारे मतके प्रवर्त्तक वा आचार्य्य हमें कह रहे हैं कि यह सत्यहै।

यदि इस के उत्तर में कहा जावे कि आप के बाप दादा ने भूल नहीं की, इसका निश्चय आपने कैसे किया? क्या धर्म पुस्तक में यदि आपको प्रत्यक्ष, अनुमानादि प्रमाण द्वारा कोई विरुद्ध बात प्रतीत हो तो फिर भी क्या आप उस पुस्तकको सर्वांशमें सत्यही मानेंगे? इनके उत्तरमें उनकी ओर से यही कहा जाता है कि धर्मके सिद्धान्तों पर शङ्का करने की आवश्यकता क्या है?। धर्म में तर्क वा प्रमाण द्वारा उस का क्यों अनुसन्धान करें? जैसा मानते चले आये हैं वैसा ही विश्वास रक्खेंगे।

पर यदि कोई हम से उक्त प्रश्न करे तो हम उस के उत्तर में कहेंगे कि वेद इस लिये सत्य है कि हम उन को युक्ति और प्रत्यक्षादि प्रमाण द्वारा भी सत्य पाते हैं। और स्वयं वेदों ने ही संवाद करने और प्रत्यक्ष अनुमानादि ही प्रमाण द्वारा सत्यको मानने वा अनुसंधान करने का उपदेश दिया है। ऋग्वेद की समाप्ति पर "संवदध्वम्" यह कह कर संवाद करने का उपदेश दिया है। यजुर्वेद में "सप्तऋषयः परिहिताः शरीरे" इत्यादि शब्दों द्वारा बतलाया है कि प्रत्येक मनुष्यके पास सात ऋषि वा सात ज्ञान दर्शक हैं अर्थात् बुद्धि, मन और पाँच ज्ञानेन्द्रियाँ। प्रत्यक्ष अनुमान प्रमाणादि इन सप्तऋषियों के ही ज्ञान वा व्यावहारिक क्रियाओं के नाम हैं। इसी लिये महर्षि निरुक्त कार ने 'तर्क' को 'ऋषि'

कहा और क्यों न कहता, जब कि स्वयं यजुर्वेद ने "बुद्धि" को जो तर्क करतीहै "ऋषि" दर्शाया । इस लिये हम यह कह सकते हैं कि वैदिकधर्म, ज्ञानमूलक वा सत्य धर्म है अथवा "रेशनलईज्म' है ॥

वेदों में जो कर्मकाण्ड है वह जहाँ सत्य वा ज्ञानमूलक है वहाँ उस का दूसरा लक्षण यह है कि वह मनुष्य ही नहीं किन्तु प्राणीमात्र के हितकारी कर्मकरने का बोधन कर रहा है । सर्वहितकारी कर्मों का दूसरा नाम वैदिकपरिभाषा में "यज्ञ" है और यज्ञ किन प्रकार के कर्मों को कहते हैं इसका उत्तर यजुर्वेद के प्रथम मन्त्र में **'श्रेष्ठतमकर्म'** कह कर दिया है ।

पशु हिंसा आदि दुष्कर्म यज्ञका अङ्ग नहीं हो सकते, यह **'श्रेष्ठतमकर्म'** शब्द पर विचार करने से ही सिद्ध है । इसके अतिरिक्त इसी प्रथम मन्त्रने "पशून् पाहि" यह कह कर दर्शा दिया कि पशुहिंसा यज्ञकाण्ड में नहीं । इसके सिवाय ऋग्वेद मण्डल १, अ० १ सू० १ म० ४ में "यं यज्ञमध्वरम्" जो शब्द आये हैं वह यज्ञ का हिंसा से रहित कर्म दर्शा रहे हैं ॥

अतः सर्वहितकारी, हिंसा चोरी आदि रहित, एकमात्र शुभकर्मों वा **'श्रेष्ठतमकर्मों'** का नाम "यज्ञ" है, यह हमें याद रखना चाहिये ।

जिस प्रकार सत्यज्ञान की परीक्षा संवाद और प्रमाण से हो सकती है, जिस प्रकार वैदिक कर्मों का लक्षण यह है कि वह **श्रेष्ठतमकर्म** हों, उसी प्रकार वैदिक उपासना जहाँ ज्ञानमूलक है वहाँ उसका महत्त्व यजुर्वेद में हमें यह मिलता है कि उपासक को मोह और शोक नहीं व्यापते ।

"तत्र को मोहः कः शोकः" यह यजुर्वेद के वचन बतला रहे हैं कि एक सर्वव्यापक ब्रह्म की उपासना करने वाला मोह (मानसिक आसक्ति दोष) और शोक (मानसिक पीड़ा) से मुक्त हो जाता है अर्थात् मानसिक बल की प्राप्ति ब्रह्मोपासना का फल है ।

आज युरुप पुराने आर्यों के मार्ग में चलता हुआ "ओबज़रवेशन एन्ड एक्सपेरीमेंट„ (प्रत्यक्ष प्रमाण) के सहारे सायंस का आरम्भ करके अब अनुमान प्रमाण से काम लेता हुआ फिलौसोफी में उन्नति करने लगा है ।

युरुप में सायंस को सत्यज्ञान वा शास्त्र के अर्थों में लिया जाता है । ज्ञान सत्य हो, इस के लिये वहाँ संवाद आदि सर्वदा किये जाते हैं; मानो वैदिक ज्ञानकाण्ड रूपान्तर में युरुप में फैल रहा है । कर्मकाण्ड के लेखक आज वहाँ मान गये कि जो न केवल एक समाज के लिये "यूटिलेटी" लाभदायक हों किन्तु मनुष्यमात्र को जो लाभदायक हों, ऐसे कर्म करने चाहियें ।

उपासना काण्ड में अभी उन्होंने विशेष वृद्धि नहीं की । अस्तुः—

उन वेदों के सिद्धान्तों पर मनन करने से जो कि एकमात्र सत्य और सर्वहितकारी हैं, पुराने ऋषियों ने कल्पशास्त्र की रचना की थी । कल्पशास्त्र में बीज तो वेदमन्त्र का भाग ही है पर उस बीज पर मनन करने से उन्होंने ज्ञानरूपी शाखादि से युक्त अपने शास्त्र को बना लिया था । जितने भी गृह्यसूत्र इस समय मिलते हैं यह कल्पशास्त्र के नाना ग्रन्थ हैं । उन में से चार वेदों पर जो ४ प्रसिद्ध गृह्यसूत्र हैं, मुख्यकरके उन के आधार पर महर्षि दयानन्द जी ने संस्कारविधि को रचा । इन सूत्रों में, वेद, मन्त्र ब्राह्मण तथा उपनिषद् आदि के वाक्यों की जो २ प्रतीकें रक्खी हैं, वे प्रायः संस्कारविधि में उल्लिखित पाई जाती हैं । यदि आज भारतदेश की भाषा संस्कृत होती और केवल पुराने गृह्यसूत्रों के मुख्य उद्देश्यों का ही प्रचार होता तो महर्षि दयानन्द जी को इस ग्रन्थ के निर्माण करने की आवश्यकता न होती, किन्तु दुर्भाग्यवश इस समय लोगों में संस्कारों की प्रथा बहुत कुछ लुप्त हो गई और जो संस्कार प्रचलित भी हैं उनका मुख्य उद्देश्य लोग भूल कर केवल बाह्य क्रियामात्र को ही संस्कार मान रहे हैं । इस दशा में महर्षि दयानन्द जी ने जो वेदों के अद्वितीय पण्डित और वैदिक धर्म के मर्मज्ञ थे और जिन के हृदय में यह लक्ष्य था कि आर्य्य संतान और मनुष्य मात्र ऋषियों की उत्तम बातों को जलाञ्जलि न दे बैठे, उन्होंने संग्रहरूप ग्रन्थ "संस्कारविधि" रच कर पुराने आर्य्यों के १६ संस्कारों का मुख्य उद्देश्य मनुष्यमात्र के आगे रख दिया ।

कहीं२ संस्कारों में उन्हों ने अनेक वेदमन्त्र और धर्मशास्त्र (मनुस्मृति) के श्लोक तथा आयुर्वेद के प्रमाण अपने विषय के समर्थन में नये दिये हैं जिन की प्रतीक सूत्र ग्रन्थों में नहीं हैं और ऐसा करने से उन्हों ने कुरीतियों के निवारण करने में आर्यमात्र को बड़ी सहायता दी है। यह संस्कारविधि जैसा कि उस का नाम ही दर्शा रहा है कर्मकाण्ड का ग्रन्थ है। इस ग्रन्थ का उद्देश्य एकमात्र मनुष्य जाति को वास्तविक वा श्रेष्ठ मनुष्य जाति बनाने का है।

इस ग्रन्थ में उन सोलह संस्कारों का सारशीति से वर्णन है जिन के द्वारा प्राचीन काल में मनुष्य जाति के आदि पितृ-ऋषि लोगों ने मनुष्य जाति को श्रेष्ठ मनुष्यजाति बना रक्खा था। "यूजेनिकस" पश्चिमीयशास्त्र इस समय कह रहा है कि मनुष्यजाति को विवाह आदि की उत्तम प्रथा नियत करने से हम श्रेष्ठ मनुष्यजाति बना सकते हैं।

मनुष्य, श्रेष्ठमनुष्य उत्पन्न हों इस लिये विवाह तथा गर्भाधान संस्कार ऋषियों ने रक्खे थे। मनुष्य के बच्चे का बालकपन सुख से व्यतीत हो और भावी शारीरिक तथा मानसिक उन्नति के बीज उस में अङ्कुरित किये जावें इस लिये पुंसवन, सीमन्तोन्नयन, जातकर्म, नामकरण, निष्क्रमण, अन्नप्राशन, चूडाकर्म तथा कर्णवेध संस्कार ऋषियों ने रक्खे। मनुष्य का बच्चा, विद्या का अनुरागी हो इस के लिये यज्ञोपवीत संस्कार रक्खा। मनुष्य का बालक ब्रह्मचर्यव्रत धारण करके बलवान्, विद्वान् और मनुष्य जाति का प्रेमी हो सके इस के लिये "वेदारम्भ संस्कार" था।

ब्रह्मचारी वा ब्रह्मचारिणी विद्यालय से जब लौटें तब उनको गृहस्थ के लिये तैयार करने को समावर्त्तन संस्कार किया जाता था। गृहस्थी की जब वृद्धावस्था आरम्भ हो तब उस को जितेन्द्रिय, तपस्वी, जिज्ञासु और प्रेमद्वारा मनुष्यजाति की उत्तमता से सेवा करने योग्य बनाने के लिये वानप्रस्थ संस्कार था। वानप्रस्थी ईश्वरवत् निष्काम रीति से परोपकार करता हुआ सत्यज्ञान और प्रेम की धारा बहा कर मनुष्यजाति को सत्य ज्ञान से उन्नत और प्रेम से आनन्दित कर सके और अपने

धार्मिक जीवनमें जीवन दे सके इस लिये संन्यास संस्कार रक्खा था । मृतक शरीर को भस्म करने से मनुष्यजाति को संक्रामक रोगों से बचने के लिये अन्त्येष्टि संस्कार था । संस्कार रस्म व रिवाज का नाम नहीं, किन्तु मानसिक (लिङ्गशरीर) शुद्धि तथा शारीरिक व स्थूलशरीर की शुद्धि के लिये जो क्रियाएँ भली प्रकार (ज्ञानपूर्वक) की जावें उन को ऋषि लोगों ने "संस्कार" का नाम दिया था ।

इस संस्कारविधि ग्रन्थों में संस्कृत प्रमाण जो दिये गये हैं उन का भाषानुवाद प्रायः नहीं है और भाषा के बहुत से स्थल ऐसे सूत्र रूप हैं कि सर्वसाधारण को बिना व्याख्या समझ में नहीं आ सकते । इस लिये संस्कृत भाग का अनुवाद हो तथा वह प्रमाण किन २ ग्रन्थों के हैं उन का अन्वेषण किया जाय और मूल ग्रन्थ के संस्कृत तथा भाषा लेख में जो अशुद्धि यन्त्रालय के किसी कर्मचारी वा लेखक के दृष्टिदोष के कारण रह गई है उनका अनेक ग्रन्थों के अन्दोलन द्वारा परिशोधन किया जाय यह एक काम था । तथा इस संस्कृत के अनुवाद के साथ पूर्व की विद्यमान सूत्ररूप भाषा का व्याख्यान हो और संस्कार का मुख्य उद्देश्य दर्शाया जावे यह दूसरा काम था ।

आज से दो वर्ष पूर्व गुरुकुल देवलाली के प्रथम महोत्सव पर श्रीयुत विद्वद्वर्य पण्डित भीमसेन जी शर्मा आगरा निवासी, आचार्य गुरुकुल देवलाली से मेरी भेंट हुई तो बात चीत में मैंने इनसे कहा कि यदि आप मूल संस्कृत का अनुवाद करने तथा ग्रन्थ परिशोधन का काम अपने शिर पर लेवें तो व्याख्या भाग का काम मैं पूर्ण करके ग्रन्थ को यथाशक्ति शीघ्र निकाल सकता हूँ । उन्होंने यह समझकर कि ऐसा करने से ऋषि सन्तान में संस्कारों की प्रथा दृढ़ होगी कृपापूर्वक यह बात स्वीकार की और छः मास के पश्चात् ही अपना भाग पूर्ण कर के मुझे भेज दिया । इस अनुवाद भाग से उन के श्रममय अन्वेषण, उच्चपाण्डित्य, युक्तिपूर्ण संगति तथा उत्तम अर्थों का परिचय विद्वन्मण्डल को मिलेगा । मेरे व्याख्या भाग का मूल व आधार उन का अनुवाद भाग ही है । उक्त

पण्डित जी की संस्कृत की उच्चयोग्यता, वह लोग भली प्रकार जानते हैं जिन्होंने उन की बनाई हुई संस्कृत रीडरें जो अनेक गुरुकुलों में पढ़ाई जाती हैं, देखी हैं। संस्कृत के जिन अनेक पण्डितों ने आर्यसमाज में रह कर संस्कृत साहित्य के प्रचारार्थ अनेक प्रकार के कष्ट सहन किये उनमें से निस्संदेह पण्डित भीमसेन जी आगरा निवासी भी एक हैं। आज कल वह महाविद्यालय ज्वालापुर (जिला सहारनपुर) में संस्कृत के न केवल मुख्य उपाध्याय ही हैं किन्तु महाविद्यालय सभा ज्वालापुर के उपमन्त्री भी हैं।

जिन महानुभाव आर्य समाज के भूषण रूप प्रसिद्ध विद्वानों ने मुझे अपनी अमूल्य सम्मति, विचार, परामर्श आदि द्वारा वा किसी अन्य प्रकार से ग्रन्थ रचना में सहायता दी है उन के शुभनाम धन्यवादपूर्वक नीचे प्रकाशित किये जाते हैं।

(१) श्रीयुत राय ठाकुरदत्त जी प्रधान प्रबन्धकर्त्री सभा गुरुकुल गुजराँवाला, पेन्शनर डिस्ट्रिक्ट जज लाहौर।

(२) श्रीयुत पं० जगन्नाथ जी निरुक्तरत्न प्रधान आर्य समाज अमृतसर।

(३) श्रीयुत डाक्टर कल्याण दास जी, जे, देसाई बी० ए० एल० एम० एन्ड० एस० मन्त्री आर्य विद्यासभा बम्बई।

(४) श्रीयुत पण्डित शिवदत्त जी काव्य तीर्थ बनारस।

(५) श्रीयुत महाशय जगनलाल जी इंग्लिशटीचर बड़ोदा।

(६) श्रीयुत पण्डित श्रीराम जी शर्म्मा हिन्दीप्रोफ़ेसर मेलट्रेनिंग कालेज बड़ोदा।

(७) श्रीयुत पण्डित रघुवर दयालु जी शर्म्मा हिन्दी प्रोफ़ेसर फीमेलट्रेनिंग कालेज बड़ोदा।

इन के अतिरिक्त पूज्यवर महात्मा श्री स्वामि विश्वेश्वरानन्दजी सरस्वती तथा पूज्यवर महात्मा श्री स्वामि नित्यानन्द जी सरस्वती, जो भारतवर्षीय आर्यसमाजों के प्रसिद्ध महोपदेशक तथा विद्यारत्न हैं और

जिन्होंने कई अवसरों पर अपने सत्संग का मुझे लाभ दे कर प्राचीन शास्त्रों की महत्त्वसूचक अनेक बातें दर्शाईं, मैं इन सब को विशेष धन्यवाद देता हूँ ।

अन्त में मुझे केवल यही निवेदन करना है कि यह "संस्कारचन्द्रिका" ग्रन्थ उन लोगों के लिये जो शास्त्रोक्त संस्कार सुधार (सोशियल रिफार्म) शुभकाम में लगे हुये हैं एक उपयोगी तथा सहायकग्रन्थ सिद्ध होगा और जो महोदयगण धार्मिकरीति से कुरीतियों के संशोधन में लगे हुए हैं उन के लिये भी काम देगा ॥ ओम् शान्तिः ३ ॥

पाठकों का शुभचिन्तक—
आत्माराम
(अमृतसर निवासी)

बड़ोदा
ता० १ माघ संवत १९६९ वि०

ओ३म्

ओ३म् नमो नमः सर्वविधात्रे जगदीश्वराय॥

# महर्षिदयानन्दसरस्वती कृत -
# संस्कारविधि की टीका-
# संस्कारचन्द्रिका

—:*:*:*:—

विश्वस्थितिप्रलयकारणमादिदेवं, योगीन्द्रवृन्दपरिषेवितचित्स्वरूपम्॥
संस्कारविध्यखिलमन्त्रपदार्थसार्थप्रोद्बोधनाय सततं शरणीकरोमि ॥१॥
श्री १०८ मद्दयानन्दसरस्वतीति, ख्यातिं दधानो यतिधर्मवीरः ॥
स्फारो जनानां हृदयान्धकारो, निराकृतो येन स कैर्न नम्यः ! ॥ २ ॥
वेदान्तविज्ञानविशुद्धसत्त्वान्, दुर्दान्तदुर्वादिकरीन्द्रसिंहान् ॥
श्री ६ काशिनाथादिपदाभिधेयान् गुरूनहं चेतसि भावयामि ॥ ३ ॥

## अथेश्वरस्तुतिप्रार्थनोपासनाः ॥

ओ३म् विश्वानि देव सवितर्दुरितानि परा सुव ।
यद्भद्रन्तन्न आसुव ॥ १ ॥ यजुः अ० ३० । मं० ३ ॥

अर्थः—हे [ सवितः ] सकल जगत् के उत्पत्ति कर्त्ता, समग्रऐश्वर्ययुक्त (देव) शुद्धस्वरूप सब सुखों के दाता परमेश्वर आप कृपा करके (नः) हमारे (विश्वानि) संपूर्ण (दुरितानि) दुर्गुण, दुर्व्यसन और दुःखोंको (परा सुव) दूर कर दीजिये (यत्) जो (भद्रम्) कल्याणकारक गुण, कर्म, स्वभाव और पदार्थ है (तत्) वह सब हम को (आ, सुव) प्राप्त कीजिये ॥ १ ॥

हिरण्यगर्भः समवर्त्तताग्रे भूतस्य जातः पतिरेक आसीत्। स दाधार पृथिवीं द्यामुतेमां कस्मै देवाय हविषा विधेम ॥ २ ॥

यजुः अ० १३ । मं० ४ ॥

अर्थः-जो ( हिरण्यगर्भः ) स्वप्रकाशरूप और जिसने प्रकाश करने हारे सूर्य चन्द्रादि पदार्थ उत्पन्न करके धारण किये हैं जो ( भूतस्य ) उत्पन्न हुए संपूर्ण जगत् का ( जातः ) प्रसिद्ध ( पतिः ) स्वामी ( एकः ) एकही चेतन स्वरूप ( आसीत् ) था जो ( अग्रे ) सब जगत् के उत्पन्न होने से पूर्व ( समवर्तत ) वर्तमान था ( सः ) सो [ इमाम् ] इस [पृथिवीम् ) भूमि [ उत ] और [द्याम्] सूर्यादि को [ दाधार ] धारण कर रहा है हम लोग उस ( कस्मै ] सुखस्वरूप [देवाय] शुद्ध परमात्माके लिये [हविषा] ग्रहणकरने योग्य योगाभ्यास और अतिप्रेम से [ विधेम ] विशेष भक्ति किया करें ॥ २ ॥

य आत्मदा बलदा यस्य विश्व उपासते प्रशिषं यस्य देवाः । यस्य च्छायाऽमृतं यस्य मृत्युः कस्मै देवाय हविषा विधेम ॥ ३ ॥ य० अ० २५ मं० १३ ॥

अर्थः [ यः ] जो [ आत्मदाः ] आत्मज्ञान का दाता [बलदाः]शरीर, आत्मा और समाज के बल का देने हारा [ यस्य ] जिसकी [ विश्वे ] सब [देवाः] विद्वान् लोग [ उपासते ] उपासना करते हैं और [ यस्य ] जिसका [प्रशिषम्] अत्यन्त सत्यस्वरूप शासन और न्याय अर्थात् शिक्षा को मानते हैं [यस्य] जिस का [ छाया ] आश्रय ही [ अमृतम् ] मोक्षसुखदायक है [ यस्य ] जिसका न मानना अर्थात् भक्ति न करनाही (मृत्युः) मृत्यु आदि दुःखका हेतुहै हम लोग उस [ कस्मै ] सुख स्वरूप [ देवाय ] सकल ज्ञान के देने हारे परमात्मा की प्राप्ति के लिये ( हविषा ) आत्मा और अन्तःकरण से (विधेम ) भक्ति अर्थात् उसी की आज्ञा पालन करने में तत्पर रहें ॥ ३ ॥

यः प्राणतो निमिषतो महित्वैक इद्राजा जगतो बभूव । य ईशेऽअस्य द्विपदश्चतुष्पदः कस्मै देवाय हविषा विधेम ॥ ४ ॥ य० अ० २३ मं० ३ ॥

अर्थः—( यः ) जो ( प्राणतः ) प्राण वाले और ( निमिषतः ) अप्राणिरूप ( जगतः ) जगत् का ( महित्वा ) अपने अनन्त महिमा से ( एकः, इत् ) एक ही ( राजा ) विराजमान राजा ( बभूव ) है ( यः ) जो ( अस्य ) इस ( द्विपदः ) मनुष्यादि और (चतुष्पदः) गौ आदि प्राणियों के शरीरकी ( ईश ) रचना करता है हम उस ( कस्मै ) सुखस्वरूप ( देवाय ) सकलैश्वर्य के देने हारे परमात्मा के लिये (हविषा) अपनी सकल उत्तम सामग्रीसे (विधेम) विशेष भक्ति करें॥४॥

येन द्यौरुग्रा पृथिवी च दृढा येन स्वः स्तभितं येन नाकः । यो अन्तरिक्षे रजसो विमानः कस्मै देवाय हविषा विधेम ॥५॥ यजु० अ० ३२ मं० ६ ॥

अर्थः—( येन ) जिस परमात्माने (उग्रा ) तीक्ष्णस्वभाव वाले ( द्यौः ) सूर्य आदि ( च ) और ( पृथिवी ) भूमि का ( दृढा ) धारण ( येन ) जिस जगदीश्वर ने ( स्वः ) सुख को (स्तभितम्) धारण और [ येन ) जिस ईश्वर ने ( नाकः ] दुःखरहित मोक्ष को धारण कियाहै ( यः) जो [ अन्तरिक्षे ] आकाश में [ रजसः ] सब लोकलोकान्तरों को ( विमानः ) विशेषमानयुक्त अर्थात् जैसे आकाश में पक्षी उड़तेहैं वैसे सबलोकोंका निर्माणकरता और भ्रमण कराता है हम लोग उस ( कस्मै ) सुखदायक ( देवाय ) कामना करने के योग्य परब्रह्म की प्राप्ति के लिये [ हविषा ] सब सामर्थ्य से ( विधेम ) विशेष भक्ति करें ॥ ५ ॥

प्रजापते न त्वदेतान्यन्यो विश्वा जातानि परि ता बभूव । यत्कामास्ते जुहुमस्तन्नोऽअस्तु वयं स्याम पतयो रयीणाम् ॥ ६ ॥ ऋ० मं० १० सू० १२१ । मं० १० ॥

अर्थः—हे ( प्रजापते ) सब प्रजाके स्वामी परमात्मा ( त्वत् ) आपसे (अन्यः) भिन्न दूसरा कोई ( ता ) उन (एतानि ) इन ( विश्वा ) सब ( जातानि ) उत्पन्न हुए जड़ चेतनादिकोंको ( न ) नहीं ( परि, बभूव ) तिरस्कार करता है अर्थात् आप सर्वोपरि हैं (यत्कामाः ) जिस २ पदार्थ की कामना वाले हम लोग ( ते ) आप का ( जुहुमः ) आश्रय लेवें और वाञ्छा करें ( तत् ) उस २ की कामना ( नः ) हमारी सिद्ध ( अस्तु ) होवे जिससे ( वयम् ) हम लोग ( रयीणाम् ) धनैश्वर्यों के ( पतयः ) स्वामी ( स्याम ) होवें ॥ ६ ॥

स नो बन्धुर्जनिता स विधाता धामानि वेद भुवनानि विश्वा। यत्र देवा अमृतमानशानास्तृतीये धामन्नध्यैरयन्त ॥ ७ ॥ य० अ०३२ मं० १० ॥

अर्थः—हे मनुष्यो! ( सः ) वह परमात्मा ( नः ) अपने लोगोंको ( बन्धुः ) भ्राताके समान सुखदायक ( जनिता ) सकल जगत् का उत्पादक ( सः ) वह ( विधाता ) सब कामोंका पूर्ण करने हारा ( विश्वा ) संपूर्ण ( भुवनानि ) लोक मात्र और ( धामानि ) नाम, स्थान, जन्मोंको ( वेद ) जानताहै और ( यत्र ) जिस ( तृतीये ) सांसारिक सुख दुःख से रहित नित्यानन्दयुक्त ( धामन् ) मोक्ष स्वरूप धारण करने हारे परमात्मा में ( अमृतम् ) मोक्ष को ( आनशानाः ) प्राप्त होके ( देवाः ) विद्वान् लोग ( अध्यैरयन्त ) स्वेच्छा पूर्वक विचरते हैं वही परमात्मा अपना गुरु, आचार्य, राजा और न्यायाधीश है अपने लोग मिल के सदा उसकी भक्ति किया करें ॥ ७ ॥

अग्ने नय सुपथा राये अस्मान् विश्वानि देव वयुनानि विद्वान्। युयोध्यस्मज्जुहुराणमेनो भूयिष्ठान्ते नम उक्तिं विधेम ॥ ८ ॥ य० अ० ४० मं० १६ ॥

अर्थः—हे ( अग्ने ) स्वप्रकाश ज्ञानस्वरूप सब जगत् के प्रकाश करने हारे ( देव ) सकलसुखदाता परमेश्वर आप जिस से ( विद्वान् ) संपूर्ण विद्या युक्त हैं कृपा करके ( अस्मान् ) हम लोगों को ( राये ) विज्ञान वा राज्यादि ऐश्वर्य की प्राप्ति के लिये ( सुपथा ) अच्छे धर्मयुक्त आप्त लोगों के मार्ग से ( विश्वानि ) संपूर्ण ( वयुनानि ) प्रज्ञान और उत्तम कर्म ( नय ) प्राप्त कराइये और ( अस्मत् ) हम से ( जुहुराणम् ) कुटिलतायुक्त ( एनः ) पापरूप कर्म को ( युयोधि ) दूर कीजिये इस कारण हम लोग ( ते ) आपकी ( भूयिष्ठाम् ) बहुत प्रकार की स्तुतिरूप ( नमउक्तिम् ) नम्रता पूर्वक प्रशंसा ( विधेम ) सदा कियाकरें और सर्वदा आनन्द में रहें ॥ ८ ॥

इतीश्वरस्तुतिप्रार्थनोपासनाप्रकरणम् ॥

# अथ स्वस्तिवाचनम् ॥

अ॒ग्निमी॑ळे पु॒रोहि॑तं य॒ज्ञस्य॑ दे॒वमृ॒त्विज॑म्। होता॑रं रत्न॒धात॑मम् ॥१॥

( पुरोहितम् ) पूर्वसे ही जगत् को धारण करने वाले ( यज्ञस्य ) हवन, विद्यादि दान और शिल्प क्रिया के ( देवम् ) प्रकाशक (ऋत्विजम्) प्रत्येक ऋतु में पूजनीय ( होतारम् ) जगत् के सुन्दर पदार्थों को देनेवाले ( रत्नधातमम् ) रमणीय रत्नादिकों के पोषण करनेवाले (अग्निम्) प्रकाशस्वरूप परमात्मा की (ईळे) मैं उपासक स्तुति करता हूँ [ भौतिकअग्निपर कभी इस मन्त्र का अर्थ होता है पर यहां यही ग्राह्य है ]॥ १ ॥

स नः॑ पि॒तेव॑ सू॒नवेऽग्ने॑ सूपाय॒नो भ॑व। सच॑स्वा नः स्व॒स्तये॑ ॥२ ॥

ऋ०। मं० । १ । सू० १ । मं० १ । ६ ॥

( अग्ने ) हे ज्ञानस्वरूप परमेश्वर ! ( सः ) लोकवेदप्रसिद्ध आप ( सूनवे पिता,इव ) पुत्र के लिए पिता जैसे, (नः ) हमारे लिए ( सूपायनो, भव ) सुखके हेतु पदार्थों की प्राप्ति कराने वाले हूजिए । और ( नः ) हम लोगों का ( स्वस्तये ) कल्याण के लिए ( सचस्व ) मेल कराइए ॥ २ ॥

स्व॒स्ति नो॑ मिमीताम॒श्विना॒ भगः॑ स्व॒स्ति दे॒व्यदि॑तिरन॒र्वणः॑ । स्व॒स्ति पू॒षा असु॑रो दधातु नः स्व॒स्ति द्यावा॑पृथि॒वी सु॑चे॒तुना॑ ॥ ३ ॥

हे ईश्वर! ( अश्विना ) अध्यापक और उपदेशक ( नः ) हमारे लिए ( स्वस्ति ) कल्याण को ( मिमीताम् ) करें ( भगः ) ऐश्वर्य रूप आप, वा वायु ( स्वस्ति ) सुख का सम्पादन करें। ( अदितिः ) अखण्डित ( देवी ) प्रकाश वाली विद्युत् विद्या (अनर्वणः) ऐश्वर्य रहित हम लोगोंके लिए कल्याणकरे। ( पूषा ) पुष्टिकारक ( असुरः ) प्राणों का देने वाला मेघादि ( स्वस्ति ) -ण को ( दधातु ) देवे। ( द्यावापृथिवी ) अन्तरिक्ष और पृथिवी ( सुचेतुना) अच्छे विज्ञान से युक्त हुए ( नः ) हमारे लिए [ स्वस्ति ] कल्याण कारी हों ॥ ३ ॥

स्वस्तये वायुमुपब्रवामहै सोमं स्वस्ति भुवनस्य यस्पतिः । बृहस्पतिं सर्वगणं स्वस्तये स्वस्तय आदित्यासो भवन्तु नः ॥ ४ ॥

हे परमेश्वर ! ( स्वस्तये ) शान्ति के लिए हम [ वायुम् ] वायु विद्या को [ उप, ब्रवामहै ] कहें वा उपदेश करें और [ सोमम् ] शान्त्यादि ऐश्वर्य देने वाले चन्द्रमा की भी हम स्तुति करते हैं [ यः ] जो चन्द्रमा ओषध्यादि रस का उत्पादक होने से [ भुवनस्य ] संसार की [ पतिः रक्षा करने वाला है । [ बृहस्पतिम् ] बड़े कर्मों के रक्षक ( सर्वगणम् ) सम्पूर्ण समूह वाले आप का ( स्वस्तये ) कल्याण के लिए आश्रयण करते हैं ( आदित्यासः ) ४८ वर्ष पर्यन्त ब्रह्मचर्य का धारण करने वाले ब्रह्मचारी, आपकी कृपा से ( नः ) हम लोगों के बीच ( भवन्तु ) उत्पन्न हों ॥ ४ ॥

विश्वे देवा नो अद्या स्वस्तये वैश्वानरो वसुरग्निः स्वस्तये । देवा अवन्त्वृभवः स्वस्तये स्वस्ति नो रुद्रः पात्वंहसः ॥ ५ ॥

हे परमात्मन् ! (अद्य, आज यज्ञ के दिन ( नः ) हमारे (स्वस्तये) आनन्द के लिए ( विश्वे देवाः ) सब विद्वान लोग हों । और ( वैश्वानरः ) सब मनुष्यों के काम में आने वाला और सर्वत्र बसने वाला ( अग्निः ) अग्नि ( स्वस्तये ) मंगल के लिए हो । ( ऋभवः ) विशिष्ट मेधावी ( देवाः विद्वान लोग ( अवन्तु) हमारी रक्षा करें और ( नः ) हमारे ( स्वस्तये ) कल्याण के लिए हो ( रुद्रः ) दुष्टों को रुलानेवाले आप ( अंहसः ) पापरूप अपराध से (स्वस्ति, पातु) शान्ति पूर्वक हमारी रक्षा करो ॥ ५ ॥

स्वस्ति मित्रावरुणा स्वस्ति पथ्ये रेवति । स्वस्ति न इन्द्रश्चाग्निश्च स्वस्ति नो अदिते कृधि ॥ ६ ॥

हे ( अदिते ! ) अखण्डितविद्य! परमेश्वर ! ( नः ) हमारे लिये ( स्वस्ति ) ( कृधि ) करो । ( च ) और ( इन्द्रः ) वायु ( च ) और ( अग्निः ) विद्युत् ( नः ) हमारे लिये ( स्वस्ति ) कल्याण करे । ( पथ्ये-रेवति ) शुभ धनादि सम्पन्न मार्ग में हमारे लिए ( स्वस्ति ) कल्याण हो । और (मित्रावरुणा) प्राण और उदान वायु (नः) हमारे लिये (स्वस्ति) कल्याण कारी हों ॥ ६ ॥

स्वस्ति पन्थामनुचरेम सूर्याचन्द्रमसाविव । पुनर्ददताघ्नता जानता संगमेमहि ॥ ७ ॥ ऋ० । मं० ५ । सू० ५१ ॥

* हे ईश्वर ! ( पन्थाम् ) मार्ग में ( स्वस्ति ) आनन्द से ( अनुचरेम ) हम लोग विचरें । ( सूर्याचन्द्रमसाविव ) जैसे सूर्य और चन्द्र विना किसी उपद्रव के विचरणकरते हैं ( पुनः ) फिर ( ददता ) सहायता देनेवाले (अघ्नता ) किसी को दुःख न देने वाले ( जानता ) ज्ञानसम्पन्न समझदार बन्धु आदि के साथ ( संगमेमहि ) हम मेल करें ॥ ७ ॥

ये देवानां यज्ञिया यज्ञियानां मनोर्यजत्रा अमृता ऋतज्ञाः। ते नो रासन्तामुरुगायमद्य यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः ॥ ८ ॥ ऋ० । मं० ७ । सू० ॥ ३५ ॥

( ये ) जो ( यज्ञियानां, देवानाम् ) यज्ञ के योग्य विद्वानों के बीच में ( यज्ञियाः ) यज्ञोपयोगी हैं और ( मनोः [illegible] ) [illegible] के साथ संगति करने वाले ( अमृताः ) जीवन्मुक्त [illegible] ( ते ) वे आप लोग ( अद्य ) आज यागदिनमें [illegible] बहुत [illegible] का ( नः ) हमारे लिए ( रासन्ताम् ) देव आप [illegible] ) तुम सब [ स्वस्तिभिः ] कल्याण कारी पदार्थों से [ सदा ] सब काल में [ नः ] हमारी [ पात ] रक्षा किया करो ॥ ८ ॥

येभ्यो माता मधुमत्पिन्वते पयः पीयूषं द्यौरदितिरद्रिबर्हाः । उक्थशुष्मान् वृषभरान्त्स्वप्नसस्ताँ आदित्याँ अनुमदा स्वस्तये ॥ ९ ॥

( येभ्यः ) जिन आदित्य ब्रह्मचारियों के लिए ( माता ) सब की निर्माण करने वाली पृथिवी [ मधुमत्, पयः ] माधुर्ययुक्त दुग्धादि पदार्थों को [पिन्वते,] देती है और [ अदितिः] अखण्डनीय [ अद्रिबर्हाः ] मेघों से बढ़ाहुआ [ द्यौः ] अन्तरिक्ष लोक [पीयूषम् ] सुन्दर जलादिको देताहै, उन [ उक्थशुष्मान् ] अत्यन्त बलवाले ( वृषभरान् ) यज्ञ द्वारा वृष्टि का आहरण करने वाले [स्वप्नसः] शोभनकर्म वाले ( तान्, आदित्यान् ) उन आदित्य ब्रह्मचारियों को ( स्वस्तये ) उपद्रव न होने के लिये ( अनुमद ) प्राप्त कराइये ॥ ९ ॥

* अथ स्वस्तिवाचनम्—ऋद्धि पूर्तेषु स्वस्त्ययनं वाचये [illegible] । ऋद्धि विवाहान्ता अपत्य संस्काराः, प्रतिष्ठाद्याराने पूर्तमिति आश्वलायन गृह्य परिशिष्टे । 'अथ स्वस्त्ययनं वाचयीत ' इत्याश्वलायनः १-८-१५ [illegible]

नृचक्षसो अनिमिषन्तो अर्हणा बृहद्देवासो अमृतत्वमानशुः।
ज्योतीरथा अहिमाया अनागसो दिवो वर्ष्माणं वसते स्वस्तये ॥१०॥

( नृचक्षसः ) कर्मकारी मनुष्यों के द्रष्टा ( अनिमिषन्तः ) आलस्य रहित ( अर्हणाः ) लोगों के पूजनीय ( देवासः ) विद्वान् लोग हैं जोकि (बृहत् ) बडे (अमृतत्वम्) अमरण धर्मको [आनशुः] प्राप्तहो चुकेहैं अर्थात् जीवन्मुक्त हैं और ( ज्योतीरथाः ) सुन्दर प्रकाशमय रथोंसे युक्तहैं (अहिमायाः) [ जिनकी बुद्धि को कोई दबा नहीं सक्ता ऐसे ( अनागसः ) पापरहित वे आदित्य ब्रह्मचारी जोकि ( दिवः ) अन्तरिक्ष लोक के ( वर्षमाणम् ) ऊंचे देश को [ वसते ] ज्ञानादि द्वारा व्याप्त करते हैं, वे [ स्वस्तये ] हमारे कल्याण के लिए हों ॥ १० ॥

सम्राजो ये सुवृधो यज्ञमाययुरपरिह्वृता दधिरे दिवि क्षयम्। ताँआ।
विवास नमसा सुवृक्तिभिर्महो आदित्याँ अदितिं स्वस्तये ॥ ११ ॥

[ सम्राजः ] अपने तेजों से अच्छे प्रकार विराजमान [ सुवृधः ] ज्ञानादि से वृद्ध [ ये, देवाः ] जो विद्वान् लोग ( यज्ञम् ) यज्ञ को ( आययुः ) प्राप्त होते हैं और जो ( अपरिह्वृताः ) किसी से भी अपीड़ित देवता लोग ( दिवि ) द्यु-लोकवर्ती बडे २ स्थानों में [ क्षयम् ] निवास को [ दधिरे ] करते हैं [ तान् ] उन [ महो, आदित्यान् ] गुणों से अधिक आदित्य ब्रह्मचारियोंको और [ अदितिम् ] अखण्डनीय आत्म विद्या को [ नमसा ] हव्यान्नके साथ और [ सुवृक्तिभिः ] अच्छी स्तुतियों के साथ [ स्वस्तये ] कल्याण के लिए [ आ, विवास ] सेवन कराओ ॥ ११॥

को वः स्तोमं राधति यं जुजोषथ विश्वे देवासो मनुषो यतिष्ठन।
को वोऽध्वरं तुविजाता अरं करद्यो नः पर्षदत्यंहः स्वस्तये ॥ १२ ॥

यह ईश्वरमुखोपदेश है—हे [विश्वे देवासः] समस्त विद्वानो ! [यम् जुजोषथ] जिस स्तुति समूह का तुम सेवन करते हो उस [ स्तोमम्] सामवेदोक्त स्तुति ...रे [ वः ] तुम लोगों के बीच में [ कः ] कौन [ राधति ] बनाता है ! और हे [ तुवि...ताः ] अनेक प्रकार के जन्म वाले [ मनुषः ] मननशील विद्वान् लोगो [ यति, स्थन ] जितने तुमहो उन [ वः ] तुम सब के बीच में [ कः कौन ( अध्वरम्) यज्ञ को [ अरम्, करत् ] अलंकृत करता है ? [ वः ] जो यज्ञ

( नः ) हमारे ( अंहः ) पाप को ( अति ) हटा कर ( स्वस्तये ) कल्याण के लिये ( पर्षत् ) पालन करता है ( इस का विचार करो ) ॥ १२ ॥

येभ्यो होत्रां प्रथमामायेजे मनुः समिद्धाग्निर्मनसा सप्तहोतृभिः । त आदित्या अभयं शर्म यच्छत सुगा नः कर्त सुपथा स्वस्तये ॥ १३ ॥

( येभ्यः ) जिन आदित्य ब्रह्मचारियों के लिये (समिद्धाग्निः) अग्निहोत्री (मनुः) मननशील विद्वान् ( मनसा ) मन से (सप्तहोतृभिः) सातहोताओं से (प्रथमाम्) मुख्य (होत्राम्) यज्ञ को (आयेजे) करता है अर्थात् जिनके लिये विद्वान् लोग बड़े २ यज्ञों द्वारा सन्मान करते हैं (ते, आदित्याः) वे आदित्य ब्रह्मचारी (अभयं, शर्म) भयरहित सुख को (यच्छत) देवें और (नः) हमारे (स्वस्तये) कल्याण के लिये (सुगा) अच्छे प्रकार प्राप्तव्य ( सुपथा ) शोभनवैदिकमार्गों को (कर्त) करें ॥ १३ ॥

य ईशिरे भुवनस्य प्रचेतसो विश्वस्य स्थातुर्जगतश्च मन्तवः । ते नः कृतादकृतादेनसस्पर्यद्या देवासः पिपृता स्वस्तये ॥ १४ ॥

(ये, देवासः) जो विद्वान् लोग (प्रचेतसः) अच्छे ज्ञान वाले (मन्तवः) सब के जाननेवाले (स्थातुः) स्थावर (च) और (जगतः) जंगम (विश्वस्य) सब ( भुवनस्य ) लोक के (ईशिरे) मालिक बनते हैं ( ते ) वे ( अद्य ) आज (स्वस्तये) कल्याण के लिये (कृतात्) किये हुए और (अकृतात्) नहीं किये हुए (एनसः) पाप से (परि, पिपृत) पार करें ॥ १४ ॥

भरेष्विन्द्रं सुहवं हवामहेऽहोमुचं सुकृतं दैव्यं जनम् । अग्निं मित्रं वरुणं सातये भगं द्यावापृथिवी मरुतः स्वस्तये ॥ १५ ॥

हे ईश्वर ! (अंहोमुचम्) पापके हटाने वाले [सुहवम्] जिसका बुलाना अच्छा हो ऐसे [इन्द्रम्] शक्तिशाली विद्वान् को [भरेषु] सङ्ग्रामों में [हवामहे] अपनी रक्षा के लिये बुलावें और [ सुकृतम् ] श्रेष्ठकर्मवाले [ दैव्यम् ] आस्तिक [जनम्] पुरुष को बुलावें और [सातये] अन्नादि[illegible] के लिये [स्वस्तये] अनुपद्रव के लिये [ अग्निम् ] अग्नि विद्या को [मित्रम् ] प्राणविद्या को (भगम्, वरुणम्) सेवनीय जल विद्या को और [द्यावापृथिवी ] अन्त-

रिक्ष और पृथिवी के [illegible] [illegible] वायुविद्या को (हम सेवन करें) ॥ १५ ॥

**सुत्रामाणं पृथिवीं द्यामनेहसं सुशर्माणमदितिं सुप्रणीतिम् । दैवीं नावं स्वरित्रामनागसमस्रवन्तीमा रुहेमा स्वस्तये ॥ १६ ॥**

[सुत्रामाणम्] [illegible] और [illegible] करने वाली [पृथिवीम्] लम्बी चौड़ी [अनेहसम्] उपद्रवरहित [सुशर्माणम्] अच्छा सुख देने वाली [अदितिम्] जो टूट न सके [सुप्रणीतिम्] जो अच्छे प्रकार बनाई गई है [द्याम्] अन्तरिक्ष [illegible] [स्वरित्राम्] सुन्दर यन्त्रों से युक्त [अस्रवन्तीम्] दृढ़ [दैवीम्, नावम्] [illegible] के ऊपर अर्थात् विमान के ऊपर हम लोग [स्वस्तये] सुख के लिए [आरुहेम] चढ़ें ॥ १६ ॥

**विश्वे यजत्रा अधि वोचतोतये त्रायध्वं नो दुरेवाया अभिह्रुतः । सत्यया वो देवहूत्या हुवेम शृण्वतो देवा अवसे स्वस्तये ॥ १७ ॥**

हे [विश्वे, यजत्राः] [illegible] [ऊतये] हमारी रक्षा के लिये [अधिवोचत] आप उपदेश [illegible] करें और [अभिह्रुतः] पीड़ा देने वाली [दुरेवायाः] दुर्गति से [नः] हमारी [त्रायध्वम्] रक्षा करो [देवाः] हे विद्वान् लोगो [शृण्वतः] हमारी [illegible] सुनने वाले आप को [सत्यया] सच्ची [वः] तुम्हारी [देवहूत्या] देवता [illegible] स्तुति से हम [अवसे] शत्रुओं से रक्षा करने के लिये [illegible] [स्वस्तये] सुख के लिये [हुवेम] बुलाया करें ॥ १७ ॥

**अपामीवामप विश्वामनाहुतिमपारातिं दुर्विदत्रामघायतः । आरे देवा द्वेषो अस्मद्युयोतनोरु णः शर्म यच्छता स्वस्तये ॥ १८ ॥**

हे [देवाः] विद्वान् लोगो [अमीवाम्] रोगादि को [अप] पृथक् करो । [विश्वाम्] सब [अनाहुतिम्] मनुष्यों की देवताओं के न बुलाने की बुद्धि को [अप] पृथक् करो । [अरातिम्] लोभबुद्धि को [अप] पृथक् करो । [अघायतः] पाप की इच्छा करने वाले शत्रु की [दुर्विदत्राम्] दुष्ट बुद्धि को दूर करो । [द्वेषः] द्वेष करने वाले सबों को [अस्मत्] हम से [आरे] दूर [युयोतन] पृथक् करो । [नः] हमारे लिए [उरु शर्म] बहुत सुख [स्वस्तये] कल्याण के लिए [यच्छत] देओ ॥ १८ ॥

अरिष्टः स मर्त्तो विश्व एधते प्र प्रजाभिर्जायते धर्मणस्परि ।
यमादित्यासोनयथा सुनीतिभिरति विश्वानि दुरिता स्वस्तये ॥ १९ ॥

हे (आदित्यासः) आदित्य ब्रह्मचारियो ! (यम्) जिन पुरुषों को (सुनीतिभिः) अच्छी नीतियों से (विश्वानि, दुरिता) सबपापों को (अति) उल्लङ्घन कर के (नयथ) सन्मार्ग में प्रवृत्त करते हो (सः, विश्वः, मर्त्तः) वे सब पुरुष (अरिष्टः) किसी से पीड़ित न हो कर (एधते) बढ़ते हैं और (धर्मणः) धर्मानुष्ठान के (परि) बाद (प्रजाभिः) पुत्रपौत्रादिकों से (प्र,जायते) अच्छी तरह प्रकट होते हैं ॥ १९ ॥

यं देवासोऽवथ वाजसातौ यं शूरसाता मरुतो हिते धने । प्रातर्यावाणं रथमिन्द्र सानसिमरिष्यन्तमा रुहेमा स्वस्तये ॥ २० ॥

हे (मरुतो, देवासः) मितभाषी देवतारूविद्वान् लोगो ! (वाजसातौ) अन्नके लाभ के लिये (यं,रथम्) जिस रमणीय गमन साधन वाष्पयानादि को (अवथ) रक्षा करते हो और (हिते, धने) रक्खे हुए धन के कारण (शूरसाता) संग्राम में जिस रथ की रक्षा करते हो (इन्द्रसानसिम्) बड़े यन्त्रकला के विद्वानों से भी सेवनीय (प्रातर्यावाणम्) प्रातःकाल में ही गमन करने वाले उसी रथ पर हम (स्वस्तये) कल्याण के लिए (आरुहेम) चढ़ें ॥ २० ॥

स्वस्ति नः पथ्यासु धन्वसु स्वस्त्यप्सु वृजने स्वर्वति । स्वस्ति नः पुत्रकृथेषु योनिषु स्वस्ति राये मरुतो दधातन ॥ २१ ॥

[मरुतः] मितभाषी विद्वान् लोगो ! [नः] हमारे लिये [पथ्यासु] मार्ग के योग्य अर्थात् जलसहित देशों में (स्वस्ति) कल्याण करो और (धन्वसु) जलरहित देशों में [स्वस्ति] जलकी उत्पत्तिरूप कल्याण करो और (अप्सु) जलों में कल्याण करो और (स्वर्वति) सब आयुधों से युक्त (वृजने) शत्रुओं को दबाने वाली सेना में (स्वस्ति) कल्याण करो, (नः) हमारे [पुत्रकृथेषु] पुत्रों के करने वाले [योनिषु] उत्पत्ति स्थानों में (स्वस्ति) कल्याण करो और [राये] धनादि [illegible] लिये कल्याण को (दधातन) धारण करो ॥ २१ ॥

स्वस्ति रिद्धि प्रपथे श्रेष्ठा रेक्णस्वत्यभि या वाममेति । सा नो अमा सो अरणे नि पातु स्वावेशा भवतु देवगोपा ॥ २२ ॥ ऋ० मं० १० सू० ६३ ॥

[या] जो पृथिवी, जाने वालों के [प्रपथे] अच्छे मार्ग के लिये [स्वस्तिः, इत्, हि] कल्याणकारिणी ही होती है और जो [श्रेष्ठा] अति सुन्दर [रेक्णस्वती] धन वाली है तथा [वामम्] सेवन के योग्य यज्ञ को [अभि, एति] प्राप्त होती है [सा] वह पृथिवी [नः] हमारे [अमा] गृह को [नि, पातु] रक्षा करे [सा, उ] वही पृथिवी [अरणे] वनादि देशों में हमारी रक्षिका हो और [देवगोपा] विद्वान् लोग जिसके रक्षक हैं ऐसी वह पृथिवी हमारे लिये [स्वावेशा ।] अच्छे स्थान वाली [भवतु] हो। [परमात्मा से प्रार्थना है कि हमारे लिए सुन्दर मार्ग वाली, अन्नादि धन पैदा करने वाली, वनादि में जिसका सुप्रबन्ध हो ऐसी, और विद्वानों (इञ्जिनियरों) से जिसमें अच्छे स्थान बनाए जावें ऐसी पृथिवी प्राप्त हो] ॥२२॥

इषे त्वोर्ज्जे त्वा वायवस्थ देवो वः सविता प्रार्पयतु श्रेष्ठतमाय कर्मण आप्यायध्वमघ्न्या इन्द्राय भागं प्रजावतीरनमीवा अयक्ष्मा मा वस्तेन ईशत मा घशंसो ध्रुवा अस्मिन् गोपतौ स्यात बह्वीर्यजमानस्य पशून् पाहि ॥ २३ ॥ यजु० अ० १ मं० १ ॥

हे ईश्वर ! [इषे] अन्नादि इष्ट पदार्थ के लिये [त्वा] तुमको (आश्रयाम इतिशेषः) आश्रयण करते हैं और (ऊर्जे) बलादिके लिए (त्वा) तुम को आश्रयण करते हैं

हे वत्स जीवो ! तुम (वायवः) वायुसदृश पराक्रम करनेवाले (स्थ) हो। (सविता देवः) सब जगत् का उत्पादक देव, (श्रेष्ठतमाय कर्मणे) यज्ञरूप श्रेष्ठ

---

। यह भगवदुक्ति, महाभाष्यकारकी "गोनर्दीयस्त्वाह" इस उक्ति की ...व से है।

... चार प्रकार का होता है, अप्रशस्त, प्रशस्त, श्रेष्ठ, श्रेष्ठतम। अप्रशस्त–चोरी ... प्रशस्त बन्धु पोषणादि। श्रेष्ठ धर्मार्थ स्थान बनाना आदि। श्रेष्ठतम यज्ञ। क्योंकि यज्ञ से वृष्टि, वृष्टि से शुद्ध अन्न की उत्पत्ति और रोगादि की निवृत्ति होती ।

कर्म के लिए (वः) तुम सबोंको (प्रार्पयतु) सम्बद्ध करे । उस यज्ञद्वारा (इन्द्राय भागम्) अपने ऐश्वर्य के भाग को (आप्यायध्वम्) बढ़ाओ । यज्ञसंपादन के लिए (अघ्न्याः) न मारनेयोग्य (प्रजावतीः) बछड़ों सहित (अनमीवाः) व्याधिविशेषों से रहित (अयक्ष्माः) यक्ष्म तपेदिक् आदि बड़े रोगों से शून्य (गौएँ संपादनकरो) [वः] तुम लोगों के बीच जो [स्तेनः] चौर्यादि दुष्ट गुणयुक्त हो, वह उन गौओं का [मा, ईशत] मालिक न बने और [अघशंसः] अन्य पापी भी [मा] उन का रक्षक न बने । ऐसा यत्न करो जिस से [बह्वीः,ध्रुवाः] बहुत सी चिरकालपर्यन्त रहने वाली गौएँ [अस्मिन् गोपतौ] निर्दुष्ट गोरक्षक के पास [स्यात] बनी रहें । और परमात्मा से प्रार्थना करो कि (यजमानस्य) यज्ञ करने वाले के पशुओं की हे ईश्वर ! तू [पाहि] रक्षा कर । इस मन्त्र में कई वाक्य हैं, कोई वाक्य जीवमुखोपदेश परक है और कोई ईश्वरमुखोपदेशपरक, यह बात यथायोग्य रीति से जान लेनी चाहिए । वाक्यसंगति के लिए उचित अध्याहार भी करना पड़ा है । अर्थान्तर भी पूर्वाचार्यों ने किये हैं परन्तु हमें यह सर्वोत्तम मालूम होता है ॥ २३ ॥

आ नो॑ भ॒द्राः क्रत॑वो यन्तु वि॒श्वतोऽद॑ब्धासो॒ऽअप॑रीतास उ॒द्भिद॑ः । दे॒वा नो॒ यथा॒ सद॒मिद्वृ॒धे॑ऽअस॒न्नप्रा॑युवो रक्षि॒तारो॑ दि॒वे॑दिवे ॥ २४ ॥

हे ईश्वर ! [नः] हम को [भद्राः] स्तुति के योग्य [क्रतवः] सङ्कल्प [आ, यान्तु] प्राप्त हों [विश्वतः] सब ओर से [अदब्धासः किसी से अविच्छिन्न (अपरीतासः) सर्वोत्तम [उद्भिदः] दुःखनाशक [देवाः] विद्वान् लोग [यथा] जैसे [नः] हमारी [सदम्] सभा में वा सर्वदा [वृधे, एव] वृद्धि के लिए ही [असन्] हों, वैसे ही [दिवे दिवे] प्रतिदिन [अप्रायुवो, रक्षितारः] प्रमादशून्य रक्षा करने वाले बनाओ ॥ २४ ॥

दे॒वानां॑ भ॒द्रा सु॑म॒तिर्ऋ॑जूय॒तां दे॒वाना॑ᳪ रा॒तिर॒भि नो॒ निव॑र्त्तताम् । दे॒वाना॑ᳪ स॒ख्यमुप॑सेदिमा व॒यं दे॒वा न॒ऽआयुः॒ प्रति॑रन्तु जी॒वसे॑ ॥ २५ ॥

हे भगवन्! [ऋजूयताम्] सरलतया आचरण करने वाले [देवानाम्] विद्वानों की [भद्रा] कल्याण करने वाली [सुमतिः] अच्छी बुद्धि [नः] हम को [अभि-निवर्तताम्] प्राप्त हो और [देवानां, रातिः] विद्वानों का विद्यादि पदार्थों का दान [प्राप्त हो]। [देवानाम्] देवों-विद्वानों के (सख्यम्) मित्रभाव को [वयम्] हम [उपसेदिम] प्राप्त हों। जिससे कि वे [देवाः] देवता लोग [नः] हमारी [आयुः] अवस्था को [जीवसे] दीर्घकालपर्यन्त जीने के लिए [प्रतिरन्तु] बढ़ावें ॥ २५ ॥

**तमीशानं जगतस्तस्थुषस्पतिं धियं जिन्वमवसे हूमहे वयम्। पूषा नो यथा वेदसामसद्वृधे रक्षिता पायुरदब्धः स्वस्तये ॥ २६ ॥**

[वयम्] हम लोग [ईशानम्] ऐश्वर्य वाले [जगतस्तस्थुषस्पतिं] चर और अचर जगत् के पति [धियंजिन्वम्] बुद्धि से प्रसन्न करने वाले परमात्मा की [अवसे] अपनी रक्षा के लिये [हूमहे] स्तुति करते हैं। [यथा] जैसे कि वह [पूषा] पुष्टिकर्ता [वेदसाम्] धनों की (वृधे) वृद्धि के लिए (असत्) हो, (रक्षिता) सामान्यतया रक्षक और (पायुः) विशेषतया रक्षक (अदब्धः) कार्यों का साधक परमात्मा (स्वस्तये) कल्याण के लिए हो (वैसे ही हम स्तुति करते हैं) ॥ २६ ॥

**स्वस्ति न इन्द्रो वृद्धश्रवाः स्वस्ति नः पूषा विश्ववेदाः। स्वस्ति नस्तार्क्ष्यो अरिष्टनेमिः स्वस्ति नो बृहस्पतिर्दधातु ॥ २७ ॥**

(वृद्धश्रवाः) बहुतकीर्ति वाला (इन्द्रः) परमैश्वर्ययुक्त ईश्वर (नः) हमारे लिए (स्वस्ति) कल्याण को (दधातु) स्थापन करे। और (पूषा) पुष्टि करने वाला (विश्ववेदाः) सर्वज्ञाता ईश्वर [नः] हमारे लिए [स्वस्ति] कल्याण को धारण करे [तार्क्ष्यः] तीक्ष्णतेजस्वी [अरिष्टनेमिः] दुःखहर्ता ईश्वर [नः] हमको [स्वस्ति] कल्याण करे। [बृहस्पतिः] बड़े २ पदार्थों का पति [नः] हमारे लिये [स्वस्ति] कल्याण को (धारण करे) ॥ २७॥

**भद्रं कर्णेभिः शृणुयाम देवा भद्रं पश्येमाक्षभिर्यजत्राः। स्थिरैरङ्गैस्तुष्टुवाꣳसस्तनूभिर्व्यशेमहि देवहितं यदायुः ॥ २८ ॥ यजु० अ० २५ मं० १४। १५। १८। १९। २८ ॥**

हे [यजत्रः] संग करने योग्य [ देवाः ] विद्वान् लोगो ! हम [कर्णेभिः] कानों से [भद्रम् ] अनुकूल ही [शृणुयाम] सुनें [अक्षभिः] नेत्रों से [भद्रम्] [अच्छी वस्तुओं को [पश्येम] देखें । [स्थिरै रङ्गैः ] दृढ़ अङ्गों से [तुष्टुवांसः ] आप की स्तुति करने वाले हम लोग [तनूभिः] शरीरों से या भार्यादि के साथ (देवहितम्) विद्वानों के लिए कल्याण कारी ( यद्,आयुः ) जो आयु है उस को (व्यशेमहि) अच्छे प्रकार प्राप्त हों ॥२८॥

२ ३ १ १ २ १ २ ३ २ ३ १ २ १ २ २ र ३ १ २

**अग्न आयाहि वीतये गृणानो हव्यदातये । निहोता सत्सि बर्हिषि ।२९।**

हे [अग्ने] प्रकाशस्वरूप परमात्मन् ! [वीतये ] कान्ति—तेजोविशेष के लिए [गृणानः] प्रशंसित हुए आप [हव्यदातये] देवताओं के लिए हव्य देने को [आयाहि] प्राप्त हूजिए [होता] सब पदार्थों के ग्रहण करने वाले आप [बर्हिषि] यज्ञादि शुभकार्यों में स्मरणादि द्वारा हमारे हृदयों में [नि, सत्सि] स्थित हूजिए । [भौतिकाग्निपरक भी इस का व्याख्यान होता है] ॥२९॥

१ २ ३ २ ३ २ ३ १ २ ३ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २

**त्वमग्ने यज्ञानाᳬ होता विश्वेषाᳬ हितः । देवेभिर्मानुषे जने ॥३०॥ सा० छन्द आ० प्रपा० १ मंत्र १ । २ ॥**

हे [अग्ने] पूजनीयेश्वर ! [ त्वं ] तू [विश्वेषां, यज्ञानाम्] छोटेबड़े सब यज्ञोंका [होता] उपदेष्टा है । [देवेभिः] विद्वान् लोगोंसे [मानुषे,जने] विचारशील पुरुषोंमें भक्त्युत्पादन द्वारा, तुम [हितः] स्थित किए जाते हो ॥३०॥

**ये त्रिषप्ताः परि यन्ति विश्वा रूपाणि बिभ्रतः । वाचस्पतिर्बला तेषां तन्वो अद्य दधातु मे ॥३१॥** अथर्व० का० १ । वर्ग १ । अनु० १। प्रपा० १ । मं० १ ॥

[त्रिषप्ताः] तीन-रजस्, तमस्, और सत्त्वगुण, तथा सात-ग्रह; अथवा तीनसात अर्थात् ५ महाभूत, ५ ज्ञानेन्द्रिय, ५ प्राण, ५ कर्मेन्द्रिय, १ अन्तःकरण [ये] जो [ विश्वा, रूपाणि ] सब चराचरात्मक वस्तुओं को [बिभ्रतः] अभिमतफल दे कर पोषण करते हुए [परि,यन्ति] यथोचित लौट फेर होते रहते हैं [तेषाम्] उनके सम्बन्धी [मे,तन्वः] मेरे शरीर के [बला] बलों को [अद्य] आज [ वाचस्पतिः ] वेदात्मकवाणी का स्वामी परमेश्वर [दधातु] करे ॥३१॥

इति स्वस्तिवाचनम् ॥

# अथ शान्तिप्रकरणम् ।

शन्न इन्द्राग्नी भवतामवोभिः शन्न इन्द्रावरुणा रातहव्या ।
शमिन्द्रासोमा सुविताय शंयोः शन्न इन्द्रापूषणा वाजसातौ ॥ १ ॥

[इन्द्राग्नी] विद्युत और अग्नि [अवोभिः] रक्षणादिद्वारा (नः) हमारे लिए (शम्) सुखकारक (भवताम्, हों। (रातहव्या) ग्रहण योग्यवस्तु जिन्होंने दी है ऐसे (इन्द्रावरुणा) बिजली और जल (नः) हमारे लिए (शम्) सुखकारक हों। (इन्द्रासोमा) बिद्वान् और ओषधिगण (सुविताय) ऐश्वर्य के लिए और (शंयोः) शान्ति हेतुक और विजय हेतुक सुख के लिए (शम्) प्रसन्नतादायक हों। (इन्द्रापूषणा) विद्वान् और वायु (नः) हमारे लिए (वाजसातौ) युद्धमें वा अन्नलाभ विषय में (शम्) कल्याणकारक हों ॥१॥

शन्नो भगः शमु नः शंसो अस्तु शन्नः पुरन्धिः शमु सन्तु रायः ।
शन्नः सत्यस्य सुयमस्य शंसः शन्नो अर्यमा पुरुजातो अस्तु ॥ २ ॥

(नः) हमारे लिए (भगः ऐश्वर्य (शम्, सुखदायक हो और (नः) हमारे लिए (शंसः) प्रशंसा (शम्, उ) शान्ति के लिए ही (अस्तु) हो। हमारे लिए (पुरन्धिः) बहुत बुद्धि (शम्) सुखकारक हो (रायः) धन (शम्, उ) शान्ति के लिए ही (सन्तु) हों। (सुयमस्य) अच्छे नियम से युक्त (सत्यस्य) सत्य का (शंसः) कथन (नः) हमको (शम्) सुखकारक हो। (नः) हमारे लिए (पुरुजातः) बहुत पुरुषों में प्रसिद्ध (अर्यमा) न्यायाधीश (शम्) सुख देनेवाला (अस्तु) हो ॥ २ ॥

शन्नो धाता शमु धर्त्ता नो अस्तु शन्न उरूची भवतु स्वधाभिः ।
शं रोदसी बृहती शं नो अद्रिः शं नो देवानां सुहवानि सन्तु ॥ ३ ॥

(नः) हमको (धाता) पोषक सब वस्तु (शम्) शान्तिकारक हो (धर्ता) धारक सब वस्तु (शम्, उ) शान्ति के लिये हो (नः) हमारे लिए (अस्तु) हो। (नः) हमें (उरूची) पृथिवी (स्वधाभिः) अन्नादि पदार्थों से (शम्) कल्याणकारक (भवतु) हो। (बृहती) बड़ी (रोदसी) अन्तरिक्ष

सहित पृथिवी, [illegible] प्रकाश सहित अन्तरिक्ष (शम्) शान्ति देने वाली हो। (अद्रिः) मेघ (नः) हमारे लिए (शम्) सुखकारक हों और (नः) हमारे लिए (देवानाम्) विद्वानों के (सुहवानि) शोभन आह्वान (शम्) सुखकारक (सन्तु) हों ॥ ३ ॥

**शन्नो॑ अ॒ग्निर्ज्योति॑रनीको अस्तु॒ शन्नो॑ मि॒त्रावरु॑णाव॒श्विना॒ शम् ।**
**शन्नः॑ सु॒कृतां॑ सुकृ॒तानि॑ सन्तु॒ शन्न॑ इषि॒रो अ॒भिवा॑तु॒ वातः॑ ॥ ४ ॥**

(ज्योतिरनीकः) प्रकाश [illegible] अनीक मुख या सेना की नाईं जिसका ऐसा (अग्निः) अग्नि (नः) हमको (शम्) सुखकारक (अस्तु) हो । (मित्रावरुणौ) प्राण और उदानवायु (नः) हमको (शम्) सुखकारक हों (अश्विना) उपदेशक और अध्यापक (शम्) सुख पहुंचाने वाले हों । (सुकृताम्) धर्मात्माओं के (सुकृतानि) धर्माचरण (नः) हमको (शम्) सुखदेने वाले (सन्तु) हों । (नः) हमारे लिये (इषिरः) गमनशील (वातः) वायु (शम्) सुख देता-हुआ (अभि, वातु) बहे ॥ ४ ॥

**शन्नो॒ द्यावा॑पृथि॒वी पू॒र्वहू॑तौ॒ शम॒न्तरि॑क्षं दृ॒शये॑ नो अस्तु ।**
**शं न॒ ओष॑धीर्व॒निनो॑ भवन्तु॒ शं नो॒ रज॑स॒स्पति॑रस्तु जि॒ष्णुः ॥ ५ ॥**

[द्यावापृथिवी] [illegible] [पूर्वहूतौ] [illegible] मे हो ऐसी क्रिया में [नः] हमारे लिए [शम्] शान्तिदायक हो । [अन्तरिक्षम्] अन्तरिक्षलोक [दृशये] ज्ञान सम्पत्ति के लिए [नः] हमारे लिए [शम्] शान्ति दायक [अस्तु] हो। [ओषधीः] ओषधियां और [वनिनः] वृक्ष (शम्) सुखकारक (नः) हमारे लिए (भवन्तु) हों (रजसस्पतिः) रजोलोक का पालन (जिष्णु) जयशील महापुरुष (नः) हमारे लिए (शम्) सुखदेनेवाला [अस्तु] हो ॥५॥

**शन्न॒ इन्द्रो॒ वसु॑भिर्दे॒वो अ॑स्तु॒ शमा॑दि॒त्येभि॒र्वरु॑णः सु॒शंसः॑ ।**
**शं नो॑ रु॒द्रो रु॒द्रेभि॒र्जला॑षः॒ शं न॒स्त्वष्टा॒ ग्नाभि॑रि॒ह शृ॑णोतु ॥ ६ ॥**

[देवः] दिव्य गुणयुक्त [इन्द्रः] सूर्य [वसुभिः] धनादि पदार्थों के साथ [नः] हमारे लिए [शम्] सुखकारक [अस्तु] [illegible] [आदित्येभिः] संवत्सरीय मासों के साथ [सुशंसः] शोभन प्रशंसावाला [वरुणः] जलसमुदाय [शम्]

सुखकारक हो । (जलाषः) शान्तस्वरूप (रुद्रः) परमात्मा (रुद्रेभिः) दुष्टों को दण्ड देनेवाले अपने गुणों के साथ (न) हमारे लिए (शम्) सुखदेने वाला हो । (त्वष्टा) विवेचक विद्वान् (ग्नाभिः) वाणियों से (ग्नेतिवाङ् नाम निघण्टौ १।११) (इह) इस संसार में (शम्) सुखमय उपदेशों को (नः) हमारे लिए (शृणोतु) सुनावे (अन्तर्भावितण्यर्थः) ॥६॥

**शं नः सोमो भवतु ब्रह्म शं नः शंनो ग्रावाणः शमु सन्तुयज्ञाः ।**
**शं नः स्वरूणां मितयो भवन्तु शं नः प्रस्वः१ शम्वस्तु वेदिः ॥ ७ ॥**

(नः) हमारे लिए (सोमः) चन्द्रमा (शम्) सुखकारक (भवतु) हो । (नः) हमारे लिए (ब्रह्म) अन्नादि रूप तत्त्व [शम्] शान्तिदायक हो [ग्रवाणः] शुभकार्यों के साधनभूत प्रस्तर-पत्थर (नः) हमको (शम्) सुख देने वाले हों । (यज्ञाः) सब प्रकार के यज्ञ (शम्,उ) शान्ति ही के लिए (सन्तु) हों । (स्वरूणाम्) यज्ञस्तम्भों के (मितयः) परिमाण (नः) हमको (शम्) सुखाधायक (भवन्तु) हों । (नः) हमको (प्रस्वः) ओषधियां (शम्) सुख देने-वाली हों । (वेदिः) यज्ञ की वेदि कुण्डादिक (शम्,उ) शान्ति ही के लिए (अस्तु) हो ॥ ७ ॥

**शं नः सूर्य उरुचक्षा उदेतु शं नश्चतस्रः प्रदिशो भवन्तु । शं नः पर्वता ध्रुवयो भवन्तु शं नः सिन्धवः शमु सन्त्वापः ॥ ८ ॥**

(उरुचक्षाः) बहुत तेज हैं जिस के ऐसा (सूर्यः) सूर्य (नः) हमारे लिए (शम्) सुख पूर्वक [उद्,एतु] उदय को प्राप्त हो । [चतस्रः] चारों [प्रदिशः] पूर्वादि बड़ी दिशाएँ वा ऐशानी आदि प्रदिशाएँ (नः) हमारे लिए (शम्) सुख करने वाली (भवन्तु) हों । (पर्वताः) पर्वत (ध्रुवयः) स्थिर और (शम्) सुखकारक (नः) हमारे लिए (भवन्तु) हों । और (नः) हमारे लिए (सिन्धवः) नदियां वा समुद्र (शम् शान्तिदायक हों (आपः) जलमात्र वा प्राण [illegible] उ) शान्ति के लिए ही (सन्तु) हों ॥ ८॥

**शं नो [illegible] र्भवतु व्रतेभिः शं नो भवन्तु मरुतः स्वर्काः ।**
**शं नो विष्णुः शमु पूषा नो अस्तु शं नो भवित्रं शम्वस्तु वायुः ॥९॥**

(व्रतेभिः) सत्कर्मों के साथ (अदितिः) विदुषी माताएँ (नः) हमारे लिये (शमन्त) शान्ति के लिए (भवतु) हों । [स्वर्काः] शोभन विचार वाले [मरुतः] मितभाषी विद्वान् लोग [नः] हमारे लिए [शम्] शान्ति के लिए [भवन्तु] हों । [विष्णुः] व्यापक ईश्वर [नः] हमको [शम्] शान्त्याधायक हो । [ पूषा ] पुष्टि कारक ब्रह्मचर्यादि व्यवहार [ नः] हमको [ शम्, उ ] शान्ति के लिये ही [अस्तु] हो । [भवित्रम्] अन्तरिक्ष, वा जल, वा भवितव्य [नः] हमको [शम्] सुख कारक हो । [वायुः] पवन [शम्, उ] शान्ति ही के लिए [अस्तु] हो ॥ ९ ॥

शं नो॑ दे॒वः स॑वि॒ता त्राय॑माणः॒ शं नो॑ भवन्तू॒षसो॑ वि॒भा॒तीः ।
शं नः॑ प॒र्जन्यो॑ भवतु प्र॒जाभ्यः॒ शं न॒ः क्षेत्र॑स्य॒ पति॑रस्तु श॒म्भुः ॥१०॥

[सविता] सर्वोत्पादक [देवः] परमेश्वर [त्रायमाणः] रक्षा करता हुआ [ नः ] हमारे लिए (शम्) सुख कारक हो । (उषसः) प्रभात वेलाएँ ( विभातीः ) विशेष दीप्ति वाली ( नः ) हमारे लिए ( शम् ) सुख कारक (भवन्तु) हों । (पर्जन्यः) मेघ (नः) हमको और (प्रजाभ्यः) संसार के लिए ( शम् , भवतु ) कल्याण कारी हो । (क्षेत्रस्य) जगत् रूपी क्षेत्र का (पतिः) स्वामी (शम्भुः) सब को सुख देने वाला (नः) हमारे लिए ( शम् ) शान्तिकारी (अस्तु) हो ॥ १० ॥

शं नो॑ दे॒वा वि॒श्वदे॑वा भवन्तु॒ शं सर॑स्वती स॒ह धी॒भिर॑स्तु । शम॑भि॒षाचः॒ शमु॑ राति॒षाचः॒ शं नो॑ दि॒व्याः पार्थि॑वाः॒ शन्नो॒ अप्याः॑ ॥ ११ ॥

(देवाः) दिव्यगुणयुक्त (विश्वदेवाः) समस्त विद्वान् (नः) हमारे लिए ( शम् भवन्तु ) सुख देने वाले हों । ( सरस्वती ) विद्या सुशिक्षायुक्त वाणी (धीभिः) उत्तमबुद्धियों के (सह) साथ (शम्, अस्तु) सुखकारिणी हो । (अभिषाचः) यज्ञ के सेवक वा आत्मदर्शी (शम्) शान्ति दायक हों (रातिषाचः) विद्याधनादि के दान का सेवन करने वाले (शम्, उ) शान्ति ही के लिए हों । (दिव्याः) सुन्दर (पार्थिवाः) पृथिवी के पदार्थ (नः) हमारे लिए (शम्) सुखद हों । (अप्याः) जल में पैदा होने वाले (नः) हमारे लिए (शम्) सुखद हों ॥११॥

शं नः॑ स॒त्यस्य॒ पत॑यो भवन्तु॒ शं [illegible]न्तः॒ शमु॑ सन्तु॒ गावः॑ ।
शं न॑ ऋ॒भवः॑ सु॒कृतः॑ सु॒हस्ताः॒ शं नो॑ भवन्तु पि॒तरो॒ हवे॑षु ॥ १२ ॥

[सत्यस्य,पतयः] सत्यभाषणादि व्यवहार के पालक [नः] हमारे लिए [शम्,भवन्तु] सुखकारी हों [अर्वन्तः] उत्तम घोड़े [नः] हमको [शम्] सुखद हों । [गावः] गौएँ [शम्,उ] शान्ति ही के लिए [सन्तु] हों । [ऋभवः] श्रेष्ठबुद्धिवाले [सुकृतः] धर्मात्मा [सुहस्ताः] अच्छे कामों में हाथ देने वाले [नः] हमारे लिए [शम्] सुखद हों । [हवेषु] हवनादि सत् कर्मों में [पितरः] माता पिता आदि [नः] हमारे लिए [शम्] सुखकारक [भवन्तु] हों ॥१२॥

शं नो अज एकपाद्देवो अस्तु शं नोऽहिर्बुध्न्यः शं समुद्रः । शं नो अपां नपात्पेरुरस्तु शं नः पृश्निर्भवतु देवगोपा ॥ १३ ॥ ऋ० मं ७ सू० ३५ मं० १-१३ ॥

(एकपात्) जगत् रूप पाद वाला अर्थात जिस के अंश में सब जगत् है वह अनन्त स्वरूप (अजः) अजन्मा (देवः) ईश्वर (नः) हमारे (शम्) कल्याण के लिए (अस्तु) हो । (बुध्न्यः, अहिः) अन्तरिक्ष में पैदा होने वाला मेघ (नः) हमारे (शम्) कल्याण के लिए हो । (समुद्रः) सागर [शम्] सुखकारी हो । (अपाम्) जलों की [नपात] नौका (नः) हमको (शम्,पेरुः) सुख पूर्वक पार लगाने वाली (अस्तु) हो । (देवगोपा) देव रक्षक है जिस में ऐसा (पृश्निः) अन्तरिक्षस्थल [नः] हमको (शम्,भवतु) सुखकारक हो ॥१३॥

इन्द्रो विश्वस्य राजति शं नोऽअस्तु द्विपदे शं चतुष्पदे ॥१४॥

हे जगदीश्वर ! जो आप (इन्द्रः) बिजली के तुल्य (विश्वस्य) संसार के बीच (राजति) प्रकाशमान हैं, उन आप की कृपा से (नः) हमारे (द्विपदे) पुत्रादि के लिए (शम्) सुख (अस्तु) होवे और हमारे (चतुष्पदे) गौआदि के लिए (शम्) सुख होवे ॥ १४ ॥

शं नो वातः पवताᳬ शं नस्तपतु सूर्य्यः । शं नः कनिक्रदद्देवः पर्जन्योऽअभि वर्षतु ॥ १५ ॥

हे परमेश्वर ! जैसे (वातः) पवन (नः) हमारे लिए (शम्) सुखकारी (पवताम्) जैसे (सूर्यः) सूर्य (नः) हमारे लिए (शम्) सुखकारी (तपतु) तपै । (कनिक्रदत्) अत्यन्त [illegible] (देवः) उत्तम गुणयुक्त विद्युतरूप अग्नि (नः) हमारे लिए (शम्) कल्याणकारी हो और (पर्जन्यः) मेघ, हमारे लिए (अभि, वर्षतु) भली प्रकार वर्षा करे ॥ १५ ॥

अहा॑नि॒ शं भव॑न्तु नः॒ शꣳ रात्री॒: प्रति॑धीयताम्। शं न॑ इन्द्रा॒ग्नी भ॑वता॒मवो॑भिः॒ शं न॒ इन्द्रा॒वरु॑णा रा॒तह॑व्या। शं न॑ इन्द्रा॒पू॒षणा॒ वाज॑सातौ॒ शमिन्द्रा॒सोमा॑ सु॒वि॒ताय॒ शं योः ॥ १६ ॥

हे परमेश्वर ! (अवोभिः) रक्षा आदि के म थ (शयोः) सुख की [सुविताय] प्रेरणा के लिए [नः] हमारे अर्थ [अहानि] दिन [शम्] सुखकारी [भवन्तु] हों [रात्रीः] रातें [शम्] कल्याण के [प्रति] प्रति [धीयताम्] हम को धारण करें [इन्द्राग्नी] बिजली और प्रत्यक्ष अग्नि [नः] हमारे लिए [शम्] सुखकारी [भवताम्] होवें [रातहव्य] ग्रहण करने योग्य सुख जिन से प्राप्त हुआ वे [इन्द्रावरुणा] विद्युत् और जल [नः] हमारे लिए [शम्] सुखकारी हों [वाजसातौ] अन्नों के सेवन के हेतु सग्राम में [इन्द्रापूषणा] विद्युत् और पृथिवी [नः] हमारे लिए [शम्] सुखकारी हों [इन्द्रासोमा] बिजली और ओषधियाँ [शम्] सुखकारिणी हों ॥ १६ ॥

शं नो॑ दे॒वीर॒भिष्ट॑य॒ऽआपो॑ भवन्तु पी॒तये॑। शं॒ योर॒भि स्र॑वन्तु नः ॥ १७ ॥

हे जगदीश्वर ! [अभिष्टये] इष्ट सुख की सिद्धि के लिए [पीतये] पीने के अर्थ [देवीः] दिव्य उत्तम [आपः] जल [नः] हमको [शम्] सुखकारी [भवन्तु] होवें और वे [नः] हमारे लिए [शंयोः] सुख की वृष्टि [अभि, स्रवन्तु] सब ओर से करें ॥ १७ ॥

द्यौः शान्ति॑र॒न्तरि॑क्ष॒ꣳ शान्तिः॑ पृथि॒वी शान्ति॒राप॒: शान्ति॒रोष॑धयः॒ शान्तिः॑। वन॒स्पत॑यः॒ शान्ति॒र्विश्वे॑दे॒वाः शान्ति॒र्ब्रह्म॒ शान्तिः॒ सर्व॒ꣳ शान्तिः॒ शान्ति॑रे॒व शान्ति॒: सा मा॒ शान्ति॑रेधि ॥१८॥

हे परमेश्वर ! [द्यौः] प्रकाशयुक्त सूर्यादि [अन्तरिक्षम्] सूर्य और पृथ्वी के बीच का लोक [पृथिवी] भूमि [आपः] जल [ओषधयः] सोमलता आदि ओषधियाँ [वनस्पतयः] वनस्पति वट आदि वृक्ष [विश्वे देवाः] सब विद्वान् लोग [ब्रह्म] वेद [सर्वम्] सब वस्तु [शान्तिः] शान्ति सुखकारी निरुपद्रव हों। शान्ति शब्द का प्रत्येक शब्द के साथ मन्त्र में अन्वय है। [शान्तिरेव शान्तिः] स्वयं शान्ति भी सुखदायिनी हो और [सा] वह (शान्तिः) शान्ति [मा] मुझ को (एधि) हो वा प्राप्त हो ॥ १८ ॥

तच्चक्षु॑र्दे॒वहि॑तं पु॒रस्ता॑च्छु॒क्रमु॒च्चर॑त् । पश्ये॑म श॒रदः॑ श॒तं जीवे॑म श॒रदः॑ श॒तᳬ शृणु॑याम श॒रदः॑ श॒तं प्रब्र॑वाम श॒रदः॑ श॒तमदी॑नाः स्याम श॒रदः॑ श॒तं भूय॑श्च श॒रदः॑ श॒तात् ॥ १९ ॥ यजु० अ० ३६ मं० ८ । १० । ११ । १२ । १७ । २४ ॥

हे सूर्यवत् प्रकाशक परमेश्वर ! आप (देवहित) विद्वानों के हितकारी (शुक्रम्) शुद्ध (चक्षुः) नेत्र तुल्य सब के दिखाने वाले (पुरस्तात्) अनादि काल से (उत्, चरत्) अच्छी तरह सबके ज्ञाता हैं (तत्) उस आप को हम (शतंशरदः) सौ वर्ष तक *(पश्येम) ज्ञान द्वारा देखें और आप की कृपा से [शतंशरदः] सौ वर्ष तक [जीवेम] हम जीवें । [शतं शरदः] सौ वर्ष तक [शृणुयाम] सच्छास्त्रों को सुनें [शतं शरदः] सौ वर्ष पर्यन्त (प्रब्रवाम) पढ़ावें वा उपदेश करें और [शतंशरदः] सौ वर्ष तक [अदीनाः] दीनता रहित [स्याम] हों [च] और [शतात् शरदः] सौ वर्ष से [भूयः] अधिक भी [देखें, जीवें, सुनें और अदीन रहें] ॥१९॥

यज्जाग्र॑तो दू॒रमु॒दैति॒ दैवं॒ तदु॑ सु॒प्तस्य॒ तथै॒वैति॑ । दू॒रं॒ग॒मं ज्योति॑षां॒ ज्योति॒रेकं॒ तन्मे॒ मनः॑ शि॒वस॑ङ्कल्पमस्तु ॥ २० ॥

हे जगदीश्वर ! आप की कृपा से [यत्] जो [दैवम्] दिव्य गुणों से युक्त (दूरंगमम्) दूर २ जाने वाला वा पदार्थों को ग्रहण करने वाला [ज्योतिषाम्] विषयों के प्रकाशक चक्षुरादि इन्द्रियों का [ज्योतिः] प्रकाश करने वाला [एकम्] अकेला [जाग्रतः] जागनेवाले के [दूरम्] दूर २ (उत्, ऐति) अधिकतया भागता है [उ] और (तत्) वह (सुप्तस्य) सोते हुए को (तथा, एव) उसी प्रकार (एति) प्राप्त होता है (तत्) वह (मे, मेरा (मनः) मन (शिवसंकल्पम्) अच्छे २ विचार वाला (अस्तु) हो ॥ २० ॥

येन॒ कर्मा॑ण्य॒पसो॑ मनी॒षिणो॑ य॒ज्ञे कृ॒ण्वन्ति॑ वि॒दथे॑षु॒ धीराः॑ । यद॑पू॒र्वं य॒क्षम॒न्तः प्र॒जानां॒ तन्मे॒ मनः॑ शि॒वस॑ङ्कल्पमस्तु ॥ २१ ॥

हे जगत्पते ! (येन) जिस मन से (अपसः) सत्कर्म निष्ठ (मनीषिणः) मन को दमन करने वाले (धीराः) ध्यान करने वाले बुद्धिमान् लोग (यज्ञे) अग्नि होत्रादि धार्मिक कार्यों में और (विदथेषु) वैज्ञानिक और युद्धादि व्यवहारों में (कर्माणि) [illegible] (कृण्वन्ति) करते हैं । और (यत्) जो (अपूर्वम्)

* [ईश्वर को ज्ञान दृष्टि से मनन करने का तात्पर्य यहां "पश्येम" शब्द से है]

अद्भुत (प्रजानाम्) प्राणिमात्र के (अन्तः) भीतर (यक्षम्) मिलाहुआ है (तत्) वह (मे) मेरा (मनः) मन (शिवसंकल्पम्) श्रेष्ठ संकल्प वाला (अस्तु) हो ॥२१॥

**यत्प्रज्ञानमुत चेतो धृतिश्च यज्ज्योतिरन्तरमृतं प्रजासु । यस्मान्नऋते किं चन कर्म क्रियते तन्मे मनः शिवसंकल्पमस्तु ॥२२॥**

हे प्रभो ! (यत्) जो (प्रज्ञानम्) बुद्धि का उत्पादक (उत) और (चेतः) स्मृति का साधन (धृतिः) धैर्य स्वरूप (च) और (प्रजासु) मनुष्यों के (अन्तः) भीतर (अमृतम्) नाशरहित (ज्योतिः) प्रकाशस्वरूप है (यस्मात्) जिस के (ऋते) विना (किम्, चन) कोई भी (कर्म) काम (न, क्रियते) नहीं किया जाता (तत्) वह (मे) मेरा (मनः) मन (शिवसङ्कल्पम्) शुद्ध विचारवाला (अस्तु) हो ॥२२॥

**येनेदं भूतं भुवनं भविष्यत्परिगृहीतममृतेन सर्वम् । येन यज्ञस्तायते सप्तहोता तन्मे मनः शिवसंकल्पमस्तु ॥ २३ ॥**

हे सर्वेश्वर ! (येन, अमृतेन) जिस नाश रहित मन से (भूतं, भुवनं, भविष्यत् सर्वमिदं परिगृहीतम्) भूत, वर्तमान, भविष्यत् सब यह जाना जाता है और (येन) जिस से [सप्तहोता] जिसमें सात होता हों ऐसा [यज्ञः] अग्निष्टोमादि यज्ञ (अग्निष्टोम में सात होता बैठते हैं) [तायते] विस्तृत किया जाता है [तत्] वह [मे] मेरा [मनः] मन [शिवसंकल्पम्] मुक्ति आदि शुभ पदार्थों के विचार वाला [अस्तु] हो ॥ २३ ॥

**यस्मिन्नृचः साम यजूꣳषि यस्मिन् प्रतिष्ठितारथनाभाविवाराः । यस्मिंश्चित्तꣳ सर्वमोतं प्रजानां तन्मे मनः शिवसंकल्पमस्तु ॥ २४ ॥**

हे अखिलोत्पादक ! (यस्मिन्) जिस शुद्ध मन में (ऋचः, साम) ऋग्वेद और सामवेद तथा (यस्मिन्) जिसमें (यजूꣳषि) यजुर्वेद [और अथर्ववेद भी] (रथनाभाविवाराः) रथ की नाभि--पहिये के बीच के काष्ठ में अरा जैसे (प्रतिष्ठिताः) स्थित हैं और (यस्मिन्) जिसमें (प्रजानाम्) प्राणियों का (सर्वम्) समग्र (चित्तम्) ज्ञान (ओतम्) सूत में मणियों के समान सम्बद्ध

है (तत्) वह (मे) मेरा (मनः) मन (शिव संकल्पम्) वेदादि सत्य शास्त्रों के प्रचाररूप संकल्प वाला (अस्तु) हो ॥ २४ ॥

**सुषारथिरश्वानिव यन्मनुष्यान्नेनीयतेऽभीशुभिर्वाजिन इव । हृत्प्रतिष्ठं यदजिरं जविष्ठं तन्मे मनः शिवसंकल्पमस्तु ॥ २५ ॥ य० अ० ३४ । मं० १–६ ॥**

(यत्) जो मन (मनुष्यान्) मनुष्यों को (सुषारथिः, अश्वानिव) अच्छा सारथि घोड़ों को जैसे (नेनीयते) अतिशय करके (इधर उधर) ले जाता है और जो मन, अच्छा सारथि (अभीशुभिः) रस्सियों से (वाजिनइव) वेग वाले घोड़ों को जैसे (यमयतीतिशेषः) मनुष्यों को नियम में रखता है और (यत्) जो (हृत् प्रतिष्ठम्) हृदय में स्थित है (अजिरम्) जरा रहित है (जविष्ठम्) अतिशय गमनशील है (तत्) वह (मे) मेरा (मनः) मन (शिवसंकल्पम्) शुद्ध संकल्प वाला (अस्तु) हो ॥ २५ ॥

**स नः पवस्व शङ्गवे शं जनाय शमर्वते । शꣳराजन्नोषधीभ्यः ॥ २६ ॥ साम० उत्तरार्च्चिके० प्रपा० १ मं० ३ ॥**

हे (राजन्) सर्वत्र प्रकाशमान परमात्मन् ! (सः) प्रसिद्ध आप (नः) हमारे (गवे) गवादि दूध देने वाले पशुओं के लिए (शम्) सुख कारक हों । (जनाय) मनुष्यमात्र के लिए (शम्) शान्ति देने वाले हों । (अर्वते) घोड़े आदि सवारी के काम में आने वाले पशुओं के लिए (शम्) सुखकारक हों । (ओषधीभ्यः) गेहूँ आदि ओषधियों के लिए हमें (शम्, पवस्व) शान्ति दीजिए ॥ २६ ॥

**अभयं नः करत्यन्तरिक्षमभयं द्यावापृथिवी उभे इमे । अभयं पश्चादभयं पुरस्तादुत्तरादधरादभयं नो अस्तु ॥ २७ ॥**

हे भगवन् ! (अन्तरिक्षम्) अन्तरिक्षलोक (नः) हमारे लिए (अभयम्) निर्भयता को (करति) करे । (उभे, इमे) ये दोनों (द्यावापृथिवी) विद्युत् और पृथिवी (अभयम्) निर्भयता करें । (पश्चात्) पीछे से (अभयम्) भय न हो । (पुरस्तात्) आगे [illegible] न हो (उत्तरात्, अधरात्) ऊँचे और नीचे से (नः) हम को (अभयम्, अस्तु) भय न हो ॥ २७ ॥

अभयं मित्रादभयममित्रादभयं ज्ञातादभयं परोक्षात् । अभयं नक्तमभयं दिवा नः सर्वा आशा मम मित्रं भवन्तु ॥ २८ ॥ अथर्व० कां० १९ सू० १५ मं० ५ । ६ ॥

हे जगत्पते ! हमें (मित्रात्) मित्र से (अभयम्) भय न हो । (अमित्रात्) शत्रु से (अभयम्) भय न हो । (ज्ञातात्) जाने हुए पदार्थ से (अभयम्) भय न हो । (परोक्षात्) न जाने हुए पदार्थ से (अभयम्) भय न हो । (नः) हमें (नक्तम्) रात्रि में (अभयम्) भय न हो । (दिवा) दिन में (अभयम्) भय न हो । (सर्वाः) सब (आशाः) दिशाएँ (मम, मित्रम्) मेरी मित्र (भवन्तु) हों ॥ २८ ॥

इति शान्तिप्रकरणम् ।

# अथ सामान्यप्रकरणम् ॥

नीचे लिखी हुई क्रिया सब संस्कारों में करनी चाहिये । परन्तु जहां कहीं विशेष होगा वहां सूचना कर दी जायगी कि यहां पूर्वोक्त और इतना अधिक करना ॥

**यज्ञदेश**—यज्ञ का देश पवित्र अर्थात् जहां स्थल, वायु शुद्ध हो किसी प्रकार का उपद्रव न हो ॥

**यज्ञशाला***—इसी को यज्ञमण्डप भी कहते हैं यह अधिक से अधिक १६ सोलह हाथ सम चौरस चौकोण और न्यून से न्यून ८ आठ हाथ की हो; यदि भूमि अशुद्ध हो तो यज्ञशाला की पृथिवी और जितनी गहरी वेदी बनानी हो उतनी पृथिवी दो २ हाथ खोद अशुद्ध निकाल कर उस में शुद्ध मट्टी भरें । यदि १६ सोलह हाथ की सम चौरस हो तो चारों ओर २० बीस खम्भे और जो ८ आठ हाथ की हो तो १२ बारह खम्भे लगा कर उन पर छाया करें वह छाया की छत्त वेदी की मेखला से १० दस हाथ ऊंची अवश्य होवे और यज्ञशाला के चारों दिशा में ४ द्वार रक्खें और यज्ञशाला के चारों ओर ध्वजा, पताका, पल्लव आदि बांधें, नित्य मार्जन

*इस विषय का प्रमाण देखना हो तो पारस्कर गृह्य सूत्र के गदाधर भाष्य में देखना चाहिये । मङ्गलेषुचसर्वेषु [illegible] तः । कार्य षोडशहस्तोवा न्यूनहस्तो दशावधिः । स्तम्भैश्चतुर्भिरेवात्र वेदीमध्ये प्रतिष्ठिते इत्यादि, अनेक मतान्युल्लिलेख गदाधरः पारस्कर गृ० कं० ४ का० १ ॥

तथा गोमय से लेपन करें और कुंकुम, हलदी, मैदा की रेखाओं से सुभूषित किया करें । मनुष्यों को योग्य है कि सब मङ्गलकार्यों में अपने और पराये कल्याण के लिये यज्ञद्वारा ईश्वरोपासना करें इसीलिये निम्न लिखित सुगन्धित आदि द्रव्यों की आहुति यज्ञकुण्ड में देवें ॥

## यज्ञकुण्ड का परिमाण ।

जो लक्ष आहुति करनी हों तो चार २ हाथ का चारों ओर सम चौरस चौकोण कुण्ड ऊपर और उतना ही गहिरा और चतुर्थांश नीचे अर्थात् तले में १ एक हाथ चौकोण लम्बा चौड़ा रहे इसी प्रकार जितनी आहुति करनी हों उतना ही गहिरा चौड़ा कुण्ड बनाना परन्तु अधिक आहुतियों में दो २ हाथ अर्थात् दो लक्ष आहुतियों में छः हस्त परिमाण का चौड़ा और सम चौरस कुण्ड बनाना, और जो पचास हज़ार आहुति देनी हों तो एक हाथ घटावे अर्थात् तीन हाथ गहिरा चौड़ा समचौरस और पौन हाथ नीचे तथा पच्चीस हज़ार आहुति देनी हों तो दो हाथ चौड़ा गहिरा सम चौरस और आध हाथ नीचे, दश हज़ार आहुति तक इतना ही अर्थात् दो हाथ चौड़ा गहिरा सम चौरस और आध हाथ नीचे रखना, पांच हज़ार आहुति तक डेढ़ हाथ चौड़ा गहिरा सम चौरस और साढ़े आठ अंगुल नीचे रहे यह कुण्ड का परिमाण विशेष घृताहुति का है, यदि इस में २५०० ढाई हज़ार आहुति मोहनभोग खीर और २५०० ढाई हज़ार घृत की देवे तो दो ही हाथ का चौड़ा गहिरा सम चौरस और आध हाथ नीचे कुण्ड रक्खे, चाहे घृत की हज़ार आहुति देनी हों तथापि सवा हाथ से न्यून चौड़ा गहिरा सम चौरस और चतुर्थांश नीचे न बनावे और इन कुण्डों में १५ पन्द्रह अंगुल की मेखला अर्थात् पांच २ अंगुल की ऊंची ३ तीन बनावे । और यह तीन मेखला यज्ञशाला की भूमि के तले से ऊपर करनी प्रथम पांच अंगुल ऊंची और पांच अंगुल चौड़ी इसी प्रकार दूसरी और तीसरी मेखला बनावें ॥

## यज्ञसमिधा * ।

पलाश, शमी, पीपल, बड़, गूलर, आंब, बिल्व, आदि की समिधा

* प्रमाण देखना हो तो पा० गृ० सू० प्रथम का० प्र० क० के गदाधर भाष्य में देख लेना चाहिए ।

वेदी के प्रमाणे छोटी बड़ी कटवा लेवें । परन्तु ये समिधा कीड़ा लगी, मलिन देशोत्पन्न और अपवित्र पदार्थ आदि से दूषित न हों। अच्छे प्रकार देख लेवें और चारों ओर बराबर कर बीच में चुनें ।

## होम के द्रव्य चार प्रकार ।

(प्रथम- सुगन्धित) कस्तूरी, केशर, अगर, तगर, श्वेत चन्दन, इलायची, जायफल, जावित्री, आदि (द्वितीय—पुष्टिकारक) घृत, दूध, फल, कन्द,-अन्न, चावल, गेहूँ, उड़द, आदि ( तीसरे मिष्ट ) शक्कर, सहत, छुहारे, दाख आदि (चौथे रोगनाशक) सोमलता और गिलोय आदि ओषधियां॥

## स्थालीपाक ।

नीचे लिखे विधि से भात, खिचड़ी, खीर, लड्डू, मोहनभोग आदि सब उत्तम पदार्थ बनावे, इसका प्रमाण:—

ओ३म् । "* देवस्त्वा सविता पुनातु०" यजु० १—३ ।

इस मन्त्र का यह अभिप्राय है कि होम के सब द्रव्य को यथावत् शुद्ध अवश्य कर लेना चाहिये अर्थात् सब को यथावत् शोध छान देख भाल सुधार कर करें, इन द्रव्यों को यथायोग्य मिला के पाक करना जैसे कि सेर भर मिश्री के मोहनभोग में रत्ती भर कस्तूरी, मासे भर केशर, दो मासे जायफल, जावित्री, सेर भर मीठा, सब डाल कर, मोहनभोग बनाना; इसी प्रकार अन्य-मीठा भात, खीर, खिचड़ी, मोदक, आदि होम के लिये बनावें । चरु अर्थात् होम के लिये पाक बनाने की विधि (ओं अग्नये त्वा जुष्टं निर्वपामि †) अर्थात् जितनी आहुति देनी हों प्रत्येक आहुति के लिये चार २ मूठी चावल आदि ले के [ओं अग्नये त्वा जुष्टं प्रोक्षामि यजु० १ १३] अर्थात् अच्छे प्रकार जल से धोके पाकस्थाली में डाल अग्नि से पका लेवे, जब होम के लिये दूसरे पात्र में लेना हो तभी नीचे लिखी आज्यस्थाली वा शाकल्यस्थाली में निकाल के यथावत् सुरक्षित रक्खें, और उस पर घृत सेचन करें ।

* (सविता) सर्वोत्पादक (देवः) परमेश्वर (त्वा) तुझ यज्ञ को अपनी दी हुई पवित्र कारक वस्तुओं से (पुनातु) पवित्र करे — कराये ।

† ऐसे बोलने की वैदिकों की परिपाटी है, देखो आश्वला० गृ० सू० अ० १, १०वीं कण्डिका सू० ६ ।

यज्ञपात्रों के लक्षण और आकृति मूल 'संस्कारविधि' में देख लेनी चाहिये।

# अथ ऋत्विग्वरणम् ।

यजमानोक्तिः *(ओमावसोः सदने सीद) इस मन्त्र का उच्चारण करके ऋत्विज् को कर्म कराने की इच्छा से स्वीकार करने के लिये प्रार्थना करे (ऋत्विगुक्तिः) ओं सीदामि । बैठता हूं ऐसा कह के जो उस के लिये आसन बिछाया हो उस पर बैठे (यजमानोक्तिः) †अहमद्योक्तकर्मकरणाय भवन्तं वृणे (ऋत्विगुक्तिः) वृतोऽस्मि । मैं स्वीकार करता हूं । ऋत्विजों का लक्षण- अच्छे विद्वान् धार्मिक, जितेन्द्रिय, कर्म करने में कुशल, निर्लोभ, परोपकारी, दुर्व्यसनों से रहित, कुलीन, सुशील, वैदिक मत वाले वेदवित्, एक दो तीन अथवा चार का वरण करें, जो एक हो तो उस का पुरोहित और जो दो हों तो ऋत्विक् पुरोहित, ३ हों तो ऋत्विक् पुरोहित और अध्यक्ष और जो चार हों तो होता, अध्वर्यु, उद्गाता और ब्रह्मा इन में से कोई हो इन का आसन वेदी के चारों ओर अर्थात् होता का वेदी से पश्चिम आसन पूर्व मुख, अध्वर्यु का उत्तर आसन दक्षिण मुख, उद्गाता का पूर्व आसन पश्चिम मुख और ‡ब्रह्मा का दक्षिण आसन उत्तर में मुख होना चाहिये और यजमान का आसन पश्चिम में और वह पूर्वाभिमुख अथवा दक्षिण में आसन पर बैठ के उत्तराभिमुख रहे और इन ऋत्विजों को सत्कार पूर्वक आसन पर बैठाना, और वे प्रसन्नता पूर्वक आसन पर बैठें और उपस्थित कर्म के बिना कर्म वा दूसरी बात कोई भी न करें और अपने २ जलपात्र से सब जने जो कि यज्ञ करने को बैठे हों वे इन मन्त्रों से तीन २ आचमन करें अर्थात् एक २ से एक २ बार आचमन करें वे मन्त्र ये हैं:-

ओं अमृतोपस्तरणमसि स्वाहा ॥ १ ॥ इस से एक,

ओं अमृतापिधानमसि स्वाहा ॥ २ ॥ इस से दूसरा,

* "आसने उपविशति-आवसोः सदने०" गोभि०गृ०सू०प्र०१ का०६ सू०१५ (वसोः) अग्नि वा यज्ञ के (सदने) स्थान में (आ, सीद) बैठिए ।

† मैं आज कहे हुए-संकल्पित काम को करने के लिए आप को स्वीकार करता हूँ ।

‡ दक्षिणतो ब्रह्मासनमास्तीर्येति पार० गृ० सू० १ का० २ का० परिशिष्टपदार्थक्रमे ।

ओं सत्यं यशः श्रीर्मयि श्रीः श्रयतां स्वाहा ॥ ३ ॥ [ मानवगृह्य सू० प्रथमपुरुष ९वां खण्ड ]

इस से तीसरा आचमन करके तत्पश्चात् नीचे लिखे मन्त्रोंद्वारा जल से अङ्गों का स्पर्श करे ।

ओं वाङ्मऽआस्येऽस्तु ॥ (पारस्कर गृ० का० १ क० ३ सू० २५) इस मन्त्रसे मुख,

ओं नसोर्मे प्राणोऽस्तु ॥ इस मन्त्र से नासिका के दोनों छिद्र,

ओं अक्ष्णोर्मे चक्षुरस्तु ॥ इस मन्त्र से दोनों आखें,

ओं कर्णयोर्मे श्रोत्रमस्तु ॥ इस मन्त्र से दोनों कान,

ओं बाह्वोर्मे बलमस्तु ॥ इस मन्त्र से दोनों बाहु,

ओं ऊर्वोर्मेऽओजोऽस्तु ॥ इस मन्त्र से दोनों जंघा और

ओं अरिष्टानि मेऽङ्गानि तनूस्तन्वा मे सह सन्तु ॥

इस मन्त्र से *दाहिने हाथ से जल स्पर्श कर के सब शरीर में मार्जन करना, पूर्वोक्त समिधाचयन वेदी में करें, पुनः—

ओं भूर्भुवः स्वः ॥ ‡

इस मन्त्र का उच्चारण कर के ब्राह्मण, †क्षत्रिय वा वैश्य× के घर से अग्नि ला अथवा घृत का दीपक जला उस से कपूर में लगा किसी एक पात्र में धर उस में छोटी २ लकड़ी लगा के यजमान वा पुरोहित उस पात्र को दोनों हाथों से उठा यदि गर्म हो तो चिमटे से पकड़ कर अगले मन्त्र से अग्न्याधान करे वह मन्त्र यह है:—

ओं भूर्भुवः स्वर्द्यौरिव भूम्ना पृथिवीव वरिम्णा । तस्यास्ते पृथिवि देवयजनि पृष्ठेऽग्निमन्नादमन्नाद्यायादधे ॥ यजु० अ० ३ मं० ५ ॥

---

* सजलहस्तेनेति पारस्करभाष्ये हरिहरः । का० १ क० ३ ।

‡ भूर्भुवः स्वरित्यभिमुखमग्निं प्रणयन्ति । गोभि० गृ० सू० प्र० १ का० १ सू० ११

† ..........आगाराद्वा ब्राह्मणस्य वा राजन्यस्य वा वैश्यस्य वा० गोभि० गृ० सू० प्र० १ का० १ सू० ६ ।

× "वैश्यस्य बहुपशोर्गृहादग्निमाहृत्य" पा० गृ० सू० का० १ क० २ सू० ३ ॥

इस मन्त्र से वेदी के बीच में अग्नि को धर उस पर छोटे २ काष्ठ और थोड़ा कपूर धर अगला मन्त्र पढ़ के व्यजन से अग्नि को प्रदीप्त करे ॥

ओं उद्बुध्यस्वाग्ने प्रति जागृहि त्वमिष्टापूर्त्ते सꣳ सृजेथामयं च । अस्मिन्सधस्थे अध्युत्तरस्मिन् विश्वे देवा यजमानश्च सीदत ॥ यजु० अ० १५ मं० ५४ ॥

जब अग्नि समिधाओं में प्रविष्ट होने लगे तब चन्दन की अथवा ऊपर लिखित पलाशादि की तीन लकड़ी आठ २ अंगुल की घृत में डुबा उन में से एक २ नीचे लिखे एक २ मन्त्र से एक २ समिधा को अग्नि में चढ़ावें । ये मन्त्र ये हैं:—

ओं अयन्त इध्म आत्मा जातवेदस्तेनेध्यस्व वर्द्धस्व चेद्ध वर्धय चास्मान् प्रजया पशुभिर्ब्रह्मवर्चसेनान्नाद्येन समेधय, स्वाहा ॥ इदमग्नये जातवेदसे-इदन्न मम ॥ १ ॥ *

इस मन्त्र से एक । (आश्वलायन गृ० प्रथम अध्याय, कण्डिका १०वी सू० १२)

ओं समिधाग्निं दुवस्यत घृतैर्बोधयतातिथिम् । आस्मिन् हव्या जुहोतन, स्वाहा ॥ इदमग्नये इदन्न मम ॥ १ ॥ इस से और

सुसमिद्धाय शोचिषे घृतं तीव्रं जुहोतन । अग्नये जातवेदसे, स्वाहा ॥ इदमग्नये जातवेदसे—इदन्न मम ॥ २ ॥ इस मन्त्र से अर्थात् इन दोनों मन्त्रों से दूसरी

तन्त्वा समिद्भिरङ्गिरो घृतेन वर्द्धयामसि । बृहच्छोचायविष्ठ्य, स्वाहा ॥ इदमग्नयेऽङ्गिरसे—इदन्न मम ॥ ३ ॥ यजु० अ० ३ मं० १ । २ । ३ ॥

इस मन्त्र से तीसरी समिधा की आहुति देवे ।

इन मन्त्रों से समिदाधान कर के होम का शाकल्य जो कि यथावत् विधि से बनाया हो, सुवर्ण, चाँदी, कांसा आदि धातु के पात्र अथवा काष्ठ पात्र में वेदि के पास सुरक्षित धरें पश्चात् उपरि लिखित घृतादि जो कि

---

* "अयन्त इध्म" इस मन्त्र से एक घृत की आहुति दी जाय और आगे के तीन मन्त्रों से तीन समिधाएँ घृत में भिगो कर छोड़ी जावें ऐसा कई विद्वान् मानते हैं ।

उष्ण कर छान पूर्वोक्त सुगन्ध्यादि पदार्थ मिला कर पात्रों में रक्खा हो, उस (घृत वा अन्य मोहनभोगादि जो कुछ सामाग्री हो) में से कम से कम ६ मासा भर अधिक से अधिक छटाँक भर की आहुति देवे यही आहुति का परिमाण है। उस घृत में से चमसा कि जिस में छः मासा ही घृत आवे ऐसा बनाया हो, भर के नीचे लिखे मन्त्र से पाँच आहुतियाँ देनी॥

ओम् अयन्त इध्म आत्मा जातवेदस्तेनेध्यस्व वर्धस्व चेद्ध वर्द्धय चास्मान् प्रजया पशुभिर्ब्रह्मवर्चसेनान्नाद्येन समेधय स्वाहा॥ इदमग्नये जातवेदसे—इदन्न मम॥ १॥

तत्पश्चात् वेदी के पूर्व दिशा आदि में, अञ्जलि में जल लेके चारों ओर छिड़कावे; उस के ये मन्त्र हैं:—

| | | |
|---|---|---|
| ओम् अदितेऽनुमन्यस्व॥ इस मन्त्र से दक्षिण से पूर्व, | | आपस्तम्ब |
| ओम् अनुमतेऽनुमन्यस्व॥ इस से पश्चिम से उत्तर | | गृ० सू० ख० |
| ओं सरस्वत्यनुमन्यस्व॥ इस से उत्तर से पूर्व, और | | २, सू०, ४ पटल १ |

ओं देव सवितः प्रसुव यज्ञं प्रसुव यज्ञपतिं भगाय। दिव्यो गन्धर्वः केतपूः केतं नः पुनातु वाचस्पतिर्वाचं नः स्वदतु॥ यजु० अ० ३० मं० १॥ ( पूर्वोक्त आपस्तम्ब )

इस मन्त्र से वेदी के चारों ओर जल छिड़कावे इस के पश्चात् सामान्य होमाहुति गर्भाधानादि प्रधान संस्कारों में अवश्य करें, इस में मुख्य होम के आदि और अन्त में जो आहुति दी जाती है उन में से यज्ञकुण्ड के उत्तर भाग में जो एक आहुति और यज्ञकुण्ड के दक्षिण भाग में दूसरी आहुति देनी होती है उसका नाम "आघारावाज्याहुति" कहते हैं और जो कुण्ड के मध्य में आहुतियाँ दी जाती हैं उन को "आज्यभागाहुति" कहते हैं सो घृतपात्र में से स्रुवा को भर अंगूठा मध्यमा अनामिका से स्रुवा को पकड़ के—

* ओं अग्नये स्वाहा ( य० अ० २२ मं० २७ )॥ इदमग्नये—इदन्न मम॥
इस मन्त्र से वेदी के उत्तर भाग अग्नि में

* आपस्तम्ब गृ० सू० ख० २सू० [illegible] भाषा में लिखे आहुतियों के नामादि भी आपस्तम्ब, पारस्करादिकों में विद्यमान हैं। कहीं प्रकार भेद है।

ओं सोमाय स्वाहा (य० २२—२७) ॥ इदं सोमाय—इदन्न मम ॥

इस मन्त्र से वेदी के दक्षिणभाग में प्रज्वलित समिधा पर आहुति देनी तत्पश्चात्

ओं प्रजापतये स्वाहा ॥ य० अ० १८ मं० २८ ॥ इदं प्रजापतये—इदन्न मम ।

ओम् इन्द्राय स्वाहा ॥ य० अ० २२ मं० २७ इदमिन्द्राय—इदन्न मम ॥†

इन दोनों मन्त्रों से वेदी के मध्य में दो आहुति देनी उस के पश्चात् चार आहुति अर्थात् आघारावाज्यभागाहुति देके अब प्रधान होम अर्थात् जिस २ कर्म में जितना २ होम करना हो, करके पश्चात् पूर्णाहुति पूर्वोक्त चार ( आघारावाज्यभागा० ) देवें पुनः शुद्ध किये हुए उसी घृतपात्र में से स्रुवा को भर के प्रज्वलित समिधाओं पर व्याहृति की चार आहुति देवें ॥

ओं भूरग्नये स्वाहा ॥ इदमग्नये—इदन्न मम ॥

ओं भुवर्वायवे स्वाहा ॥ इदं वायवे—इदन्न मम ॥

ओं स्वरादित्याय स्वाहा ॥ इदमादित्याय—इदन्न मम ॥

ओं भूर्भुवः स्वरग्निवाय्वादित्येभ्यः स्वाहा ॥ इदमग्निवाय्वादित्येभ्यः, इदन्न मम ॥ पार० का० १ कं० ५ सू० ३—४ ।

ये चार घी की आहुति दे कर स्विष्टकृत् होमाहुति एक ही है यह घृत की अथवा भात की देनी चाहिये उस का मन्त्रः—

‡ओं यदस्य कर्मणोऽत्यरीरिचं यद्वा न्यूनमिहाकरम् । अग्निष्टत्स्विष्टकृद्विद्वान्त्सर्वं स्विष्टं सुहुतं करोतु मे । अग्नये स्विष्टकृते सुहुतहुते सर्वप्रायश्चित्ताहुतीनां कामानां समर्द्धयित्रे, सर्वान्नः कामान्त्समर्द्धय स्वाहा ॥ इदमग्नये स्विष्टकृते, इदन्न मम ॥ शत० का० १४ अ० ८ प्र० ७ क० ५ ।

इस से एक आहुति करके "प्राजापत्याहुति" नीचे लिखे मन्त्र को मन में बोल के देनी चाहिये ।

---

† ओं प्रजापतये स्वाहा ॥ ओम् इन्द्राय स्वाहा ॥ ओं अग्नये स्वाहा ॥ ओं सोमाय स्वाहा ॥

अयमेव पाठक्रमो गृह्यसूत्रानुकूलत्वात्समञ्जसः प्रतिभाति ।

‡ आपस्तम्ब ख० २ सू० ७

ओं प्रजापतये स्वाहा ॥ इदं प्रजापतये—इदन्न मम ॥

इस से मौन †कर के एक आहुति देकर चार आज्याहुति घृत की देवे परन्तु जो नीचे लिखी आहुति चौल समावर्त्तन और विवाह में मुख्य हैं वे चार मन्त्र ये हैं—

ओं भूर्भुवः स्वः । अग्न आयूंषि पवस आसुवोर्ज्जमिषं च नः । आरे बाधस्व दुच्छुनां स्वाहा ॥ इदमग्नये पवमानाय, इदन्न मम ॥ १ ॥ ओं भूर्भुवः स्व । अग्निर्ऋषिः पवमानः पाञ्चजन्यः पुरोहितः । तमीमहे महागयं स्वाहा ॥ इदमग्नये पवमानाय—इदन्न मम ॥ २ ॥ ओं भूर्भुवः स्वः । अग्ने पवस्व स्वपा अस्मे वर्चः सुवीर्यम् । दधद्रयिं मयि पोषं स्वाहा ॥ इदमग्नये पवमानाय—इदन्न मम ॥ ३ ॥ ऋ० मं० ९ । सू० ६६ । मं० १९ । २० । २१ ॥

ओं भूर्भुवः स्वः । प्रजापते न त्वदेतान्यन्यो विश्वा जातानि परिता बभूव । यत्कामास्ते जुहुमस्तन्नो अस्तु वयं स्याम पतयो रयीणां स्वाहा ॥ इदं प्रजापतये—इदन्न मम ॥ ४ ॥ ऋ० मं० १० सू० १२१ मं० १० ॥

इस से घृत की ४ आहुति करके "अष्टाज्याहुति" निम्नलिखित मन्त्रों से सर्वत्र मङ्गल कार्यों में ८ आठ आहुति देवें परन्तु किस २ संस्कार में में कहाँ २ देनी चाहियें यह विशेष बात उस २ संस्कार में लिखेंगे ॥

*ओं त्वन्नोऽअग्ने वरुणस्य विद्वान् देवस्य हेडोऽअवयासिसीष्ठाः । यजिष्ठो वन्हितमः शोशुचानो विश्वा द्वेषांसि प्रमुमुग्ध्यस्मत् स्वाहा । इदमग्नीवरुणाभ्याम्, इदन्न मम ॥ १ ॥ ओं स त्वन्नोऽअग्नेऽवमो भवोती नेदिष्ठोऽअस्या उषसो व्युष्टौ । अवयक्ष्व नो वरुणं रराणो वीहि मृडीकं सुहवो न एधि स्वाहा ॥ इदमग्नीवरुणाभ्यां—इदन्न मम ॥ २ ॥ ऋ० मं० ४ । सू० १ । मं० ४ । ५ ॥

---

† तूष्णीं द्वितीये उभयत्र, आश्वलायन गृ० प्र० १ क० ९ सू० ८ ऐसे ही मौन हो कर आहुति देने का अन्यत्र भी [illegible]न है ।

* पार० का० १ क० २ सू० ८ ।

ओं इमं मे वरुण श्रुधी हवमद्या च मृडय । त्वामवस्युरा-चके स्वाहा ॥ इदं वरुणाय--इदन्न मम ॥ ३ ॥ ऋ० मं० १ । सू० २५ मं० १९ ॥

ओं तत्त्वा यामि ब्रह्मणा वन्दमानस्तदाशास्ते यजमानो हविर्भिः । अहेडमानो वरुणेह बोध्युरुशंस मा न आयुः प्रमोषीः स्वाहा ॥ इदं वरुणाय--इदन्न मम ॥ ४ ॥ ऋ० मं० १ । सू० २४ । मं० ११ ॥

† ओं ये ते शतं वरुण ये सहस्रं यज्ञियाः पाशा वितता महान्तः ॥ तेभिर्नोऽअद्य सवितोत विष्णुर्विश्वे मुञ्चन्तु मरुतः स्वर्काः स्वाहा ॥ इदं वरुणाय सवित्रे विष्णवे विश्वेभ्यो मरुद्भ्यः स्वर्केभ्यः । इदन्न मम ॥ ५ ॥ ओं अयाश्चाग्नेऽस्यनभिशस्तिपाश्च सत्यमित्त्वमयासि । अया नो यज्ञं वहास्यया नो धेहि भेषजꣳ स्वाहा ॥ इदमग्नये अयसे--इदन्न मम ॥ ६ ॥ ओं उदुत्तमं वरुण पाशमस्मदवाधमं विमध्यमं श्रथाय । अथा वयमादित्य व्रते तवानागसोऽदितये स्याम स्वाहा ॥ इदं वरुणायाऽऽदित्यायाऽदितये च । इदन्न मम ॥ ७ ॥ ऋ० मं० १ सू० २४ । मं० १५ ॥

ओं भवतन्नः समनसौ सचेतसावरेपसौ । मा यज्ञꣳ हिꣳसिष्टं मा यज्ञपतिं जातवेदसौ शिवौ भवतमद्य नः स्वाहा ॥ इदं जातवेदोभ्याम्--इदन्न मम ॥ ८ ॥ यजु० अ० ५ । मं० ३ ॥

सब संस्कारों में मधुर स्वर से मन्त्रोच्चारण यजमान ही करे, न शीघ्र न विलम्ब से उच्चारण करे किन्तु मध्य जैसा कि जिस वेद का उच्चारण है करे यदि यजमान न पढ़ा हो तो इतने मन्त्र तो अवश्य पढ़ लेवे यदि कोई कार्यकर्त्ता जड़ मंदमति काला अक्षर भैंस बराबर जानता हो तो वह शूद्र है अर्थात् शूद्र मन्त्रोच्चारण में असमर्थ हो तो पुरोहित और ऋत्विज् मन्त्रोच्चारण करें और कर्म उसी मूढ़ यजमान के हाथ से करावें पुनः निम्नलिखित मन्त्र से पूर्णाहुति स्रुवा को घृत से भर के करे—

† पराशरादिसंमत, ये दोनों शाखान्तरीय मन्त्र हैं ।

ओं सर्वं वै पूर्णंꣳ स्वाहा ॥ ‡

इस मन्त्र से एक आहुति देवे ऐसे दूसरी और तीसरी आहुति दे के जिसको दक्षिणा देनी हो देवे वा जिसको जिमाना हो जिमा, दक्षिणा दे के सब को विदा कर स्त्री पुरुष हुतशेष घृत, भात वा मोहनभोग को प्रथम जीम के पश्चात् रुचिपूर्वक उत्तमान्न का भोजन करें ॥

## मङ्गलकार्य ।

अर्थात् गर्भाधानादि संन्यास संस्कार पर्यन्त पूर्वोक्त और निम्नलिखित सामवेदोक्त वामदेव्यगान अवश्य करें, वे मन्त्र ये हैं ॥

ओं भूर्भुवः स्वः । कया नश्चित्र आभुवदूती सदावृधः सखा । कया शचिष्ठया वृता ॥ १ ॥ ओं भूर्भुवः स्वः । कस्त्वा सत्यो मदानां मꣳहिष्ठो मत्सदन्धसः । दृढा चिदारुजे वसु ॥ २ ॥ ओं भूर्भुवः स्वः । अभीषुणः सखीनामविता जरितॄणाम् । शतम्भवास्यूतये ॥ ३ ॥

महावामदेव्यम् ॥ काऽ५या । नश्चा३ इत्रा३ आभुवात् । ऊ । ती सदावृधः सखा । औ३ होहाइ । कया२३ शचाई । ष्ठयौहो३ हुम्मार । वार तौ३ऽ५हाइ ॥ (१) ॥ काऽ५स्त्वा । सत्यो३मा३दानाम् । मा । हिष्ठोमात्सादन्ध । सा । औ३होहाइ । दृढा२३ चिदा । रुजौहो ३ । हुम्मार । वाऽ३सो३ऽ५हाशि ॥ (२) आऽ५भी । षुणा३ः सा३खीनाम् । आ । विता जरायितॄ । णाम् । औ२३ हो हायि । शता२३ म्भवा ।

‡ ( सर्वम् ) सब ( वै ) निश्चयरूप से ( पूर्णम् ) पूरा हो ।

* अपवृत्ते कर्मणि वामदेव्यगानम्, [illegible]र्थं शान्त्यर्थम् । गोभि० गृ० सू० प्र० १ का० ९ सू० २९ ।

३ २
सियौह्वोइ । हुम्मार । ताऽ२यो३ऽ५हायि ॥ (३) ॥ साम० उत्तरार्चिके । अध्याये १ । खं० ४ । मं० ३ । ४ । ५ ॥

यह वामदेव्यगान होने के पश्चात् गृहस्थ स्त्री पुरुष कार्यकर्त्ता सद्धर्मी लोकप्रिय परोपकारी सज्जन विद्वान् वा त्यागी पक्षपातरहित संन्यासी जो सदा विद्या की वृद्धि और सब के कल्याणार्थ वर्तने वाले हों उन को नमस्कार, आसन, अन्न, जल, वस्त्र, पात्र, धन आदि के दान से उत्तम प्रकार से यथासामर्थ्य सत्कार करें पश्चात् जो कोई देखने ही के लिये आये हों उन को भी सत्कारपूर्वक विदा कर दें, अथवा जो संस्कार क्रिया को देखना चाहें वे पृथक् २ मौन करके बैठे रहें कोई बात चीत हल्ला गुल्ला न करने पावें, सब लोग ध्यानावस्थित प्रसन्नवदन रहें विशेष कर्मकर्ता और कर्म कराने वाले शान्ति धीरज और विचारपूर्वक, क्रम से कर्म करें और करावें ॥ यह सामान्य विधि अर्थात् सब संस्कारों में कर्तव्य है ॥

इति सामान्यप्रकरणम् ॥

## सामान्य प्रकरण के संस्कृत भाग का क्रम से भाषार्थ—

[पृ० २८ ] (क) हे [अमृत] सुखप्रद जल ! तू [ उपस्तरणम् ] प्राणियों का आश्रयभूत [असि] है [स्वाहा] यह हमारा कथन शोभन हो ।

(ख) हे [अमृत ! ] तू [अपिधानम् ] निश्चय पोषक [असि] है ।

(ग) [मयि] मुझ में [सत्यं] सचाई [यशः] कीर्ति [श्रीः] शोभा [श्रीः] लक्ष्मी [श्रयताम्] स्थित हो [ओम्, यह परमात्मा का सर्वोत्तम नाम है, व्याकरण से इस का "रक्षकादि" अर्थ होता है । ]

[मे] मेरे [आस्ये] मुख में [वाक्] वागिन्द्रिय, सुस्थित [अस्तु] हो । [मे] मेरे [नसोः] दोनों नासिका छिद्रों में [प्राणः] प्राणवायु वा घ्राणेन्द्रिय स्थिर [अस्तु] हो । [मे] मेरे [अक्ष्णोः] नेत्र गोलकों में [चक्षुः] चक्षुरिन्द्रिय, सुस्थित [अस्तु] हो । [मे] मेरे [कर्णयोः] दोनों कानों में [श्रोत्रम् ] श्रवणेन्द्रिय, सुस्थित [अस्तु] हो । [मे] मेरे [बाह्वोः] दोनों भुजाओं में [ बलम् ] बल शक्ति [अस्तु] हो । [मे] मेरी [ऊर्वोः] जङ्घाओं में [ओजः] बेग [अस्तु] हो । [मे] मेरा [तनूः] देह और [मे तन्वाः] मेरे देह के [अङ्गानि] अवयव [सह] साथ हों [अरिष्टानि] अनुपहत--अबाधित [सन्तु] हों ।

विशेष नासिकाओं के दोनों छिद्रों को और दोनों नेत्रगोलकों को एक२ ही बार मन्त्र बोल कर स्पर्श किया जाता है परन्तु कान और बाहुओं में पूर्व दक्षिण कान और बाहु को फिर वाम कर्ण, बाहु को स्पर्श करना चाहिए॥ और मन्त्र दो दो बार बोलने चाहिएँ । ऊरुद्वय के ऊपर एक साथ ही तथा सर्वाङ्ग के ऊपर एक साथ ही जल के हाथ से स्पर्श किया जाता है ऐसी पूर्वाचार्यों की परिपाटी है । यह अङ्ग स्पर्श, जिसे गृह्यसूत्रकारों ने लिखा है, अथर्व वेद का० १९ अ० ७ सू० ६०, ६१ के प्रमाण में किया जाता है:—

"वाङ्म आसन्नसोः प्राणश्चक्षुरक्ष्णोः श्रोत्रं कर्णयोः । अपलिताः केशा अशोणा दन्ता बहु बाह्वोर्बलम् ॥ १ ॥ ऊर्वोरोजो जङ्घयोर्जवः पादयोः प्रतिष्ठा । अरिष्टानिमे सर्वात्मानि भृष्टः । अथर्व० का० १९ अ० ७ सू० ६० । तनूस्तन्वा मे भवेदतः सर्वमायुरशीय" अथर्व० का० १९ अ० ७ सू० ६१ ॥

[पृ० २९] "भूः, भुवः, स्वः" ये तीनों नाम परमात्मा के हैं इन की व्याख्या आगे लिखी है ॥

हे [ देवयजनि ] विद्वान् लोग जिस में यज्ञ करते हैं ऐसी [पृथिवि] पृथिवि ! [तस्यास्ते] प्रसिद्ध तेरी [पृष्ठे] पीठ पर [भूः, भुवः, स्वः] पृथिवी, अन्तरिक्ष और स्वर्गलोक में स्थित [भूम्ना, द्यौरिव] नक्षत्रों के बाहुल्य से जैसे आकाश विराजमान है ऐसे ज्वाला बाहुल्य से विराजमान [वरिम्णा, पृथिवी व] अपने बड़प्पन से जैसे पृथिवी सब का आधार है वैसे सर्वाश्रयभूत [अन्नादम्] यवादि अन्न को भस्म करने वाले [अग्निम्] अग्नि को [अन्नाद्याय] शुद्ध, भक्षणयोग्य अन्नोत्पत्ति के लिये [आदधे] मैं यजमान, स्थापित करता हूं ॥

हे [अग्ने] अग्ने ! तू [उद्बुध्यस्व] प्रकट हो और [प्रति, जागृहि] खूब प्रकाशित हो । [अयम्, त्वं च] यह यजमान और तू [ इष्टापूर्ते ] यज्ञादि कार्य, और धर्मार्थ स्थान बनाना आदि शुभ कार्यों को [ संसृजेथाम् ] उत्पन्न करो । [अस्मिन्, सधस्थे] इस अग्नि सहित स्थान में तथा [अधि, उत्तरस्मिन् ] इस से भी उत्तम स्थान में ईश्वर करे कि [विश्वे, देवाः] सब विद्वान् लोग [यजमानश्च] और यजमान [सीदत] बैठें ॥ [ इन मन्त्रों का अन्यान्य अर्थ भी हो सकता है । ]

हे [जातवेदः] अग्ने ! [ अयम्, इध्मः ] यह काष्ठ [ ते, आत्मा ] तेरा आधार है [तेन] इस काष्ठ से [इध्यस्व] प्रदीप्त हो [वर्द्धस्व, च] और बढ़। [ अस्मान्, च ] और हम को [ इत्, ह ] अवश्य ही [ प्रजया ] पुत्रादि से [वर्धय] बढ़ा। और [ पशुभिः ] पशुओं से [ ब्रह्मवर्चसेन ] बड़ी कान्ति से [ अन्नाद्येन ] अन्नआदि से हमें [ सम्, एधय ] अच्छे प्रकार बढ़ा। [ स्वाहा ] यह हमारा दिया हुआ सुहुत हो । [ इदमग्नये, जातवेदसे, इदन्न, मम] यह दिया हुआ पदार्थ जात वेदा [उत्पन्न हुए सब पदार्थों के साथ सम्बन्ध करने वाले] अग्नि के लिए है मेरे लिए नहीं। अन्यवाक्य का ऐसा ही अर्थ सर्वत्र समझ लेना चाहिए।

[ पृ० ३०] हे विद्वान् लोगो ! तुम ( समिधा ) लकड़ियों से ( अग्निम् ) अग्नि का ( दुवस्यत ) सेवन किया करो और उस अग्नि को ( अतिथिम् ) अतिथि के तुल्य समझ कर (घृतैः) घृतादिकों से (बोधयत) प्रकाशित करो। (अस्मिन् ) इस अग्नि में (हव्या) सब प्रकार का शाकल्य ( आ, जुहोतन ) होमो-डालो ॥ १ ॥

हे मनुष्यो ! (सुसमिद्धाय) अच्छे प्रकार जलाए हुए (शोचिषे) दीप्ति वाले-शुद्ध (जातवेदसे) सबों में विद्यमान (अग्नये) अग्निके लिए (तीव्रं, घृतम् ) सब प्रकार शुद्ध किए घृत को (जुहोतन) होमो ॥ २ ॥

हे (अङ्गिरः) सब को प्राप्त होने वाले, वा गमनशील अग्ने ! (तम्, त्वा) गार्हपत्य, आहवनीय आदि रूप से प्रसिद्ध तुझ को (समिद्भिः) समिधाओं से और (घृतेन) घृत से (वर्द्धयामसि) बढ़ावें। हे अग्ने ! (बृहत्) प्रकाश, छेदनादि गुणों के कारण बड़े और (यविष्ठ्य) अति बलवान् तुम (शोच) प्रकाशित होओ ॥ ३ ॥

हे (अदिते) अखण्डनीय परमात्मन् ! आप हमें अहिंसादि सम्पादनार्थ (अनुमन्यस्व) अनुकूलमति दीजिए। हे (अनुमते) अनुगत--व्यापक ज्ञानस्वरूप ! (अनु०) पूर्ववत्। हे (सरस्वति) प्रशस्तज्ञानस्वरूप ! (अनु०, पूर्ववत्।

हे (देव) प्रकाशक ! (सवितः) सर्वोत्पादक ! ईश्वर ! आप (भगाय) ऐश्वर्य के लिए (यज्ञम् ) शिल्पादि विविधयज्ञों को (प्र, सुव) उत्पन्न कीजिए और (यज्ञपतिम् ) यज्ञों के पालक राजा को भी (प्र, सुव) उत्पन्न कीजिए। आप (दिव्यः) शुद्ध (गन्धर्वः) पृथिवी के धारक (केत पूः) विज्ञान के

पवित्र कर्त्ता हो (नः) हमारी (केतम्) बुद्धि को (पुनातु) पवित्र करो और आप (वाचस्पतिः) वाणी के स्वामी हो अतः (नः) हमारी (वाचम्) वाणी को (स्वदतु) मधुर बनाओ ॥

[पृ० ३१] १. अग्नये प्रकाशक परमात्मा के लिये वा भौतिक अग्नि के लिए (स्वाहा) सुहुत हो ।

२. सोमाय सोमरसादि के लिए वा परमात्मा की प्रीत्यर्थ (स्वाहा) सुहुत हो ।

३. प्रजापतये—प्रजाओं के पालक के लिए० ।

४. इन्द्राय—ऐश्वर्य सम्पन्न के लिए० ।

[१] अग्निरूप ईश्वर के लिए० [२] वायुव्यापक ईश्वर के लिए० [३] आदित्यवत् प्रकाशक ईश्वर के लिए० [४] पूर्वोक्त सर्वगुण सम्पन्नों के लिए० ।

[पृ० ३२] (यत्) जो (अस्य, कर्मणः) इस कर्म के विषय में (अत्यरीरिचम्) मैंने अधिक किया (यद्वा) अथवा (न्यूनम्, इह) यहाँ थोड़ा (अकरम्) किया गया । (सर्वं, स्विष्टम्) सब इष्ट वस्तुओं को (विद्वान्) जानने वाला और (स्विष्टकृत्) अच्छे इष्ट पदार्थों का करने वाला (अग्निः) परमात्मा (तत्) उस सब को (मे) मेरे लिए (सुहुतम्) अच्छे प्रकार हुत (करोतु) करे । और (स्विष्टकृते) शोभनयज्ञसम्पादक (सुहुतहुते) सुहुत को ग्रहण करने वाले (कामानाम्) इष्यमाण (सर्वप्रायश्चित्ताहुतीनाम्) सर्व प्रायश्चित्त की आहुतियों को (समर्द्धयित्रे) बढ़ाने वाले (अग्नये) भौतिक अग्नि के लिए [सुहुतहो] । हे ईश्वर ! (नः) हमारे (सर्वान्, कामान्) सब अभिलषित पदार्थों को (समर्द्धय) बढ़ाओ ॥ शेष पूर्ववत् ।

हे (अग्ने) अग्ने तू (आयूंषि) जीवनों को (पवसे) रक्षा करता है, तू (नः) हमारे लिए (ऊर्जम्) बल को (च) और (इषम्) अन्नादि को (आ, सुव) प्राप्त कराइए । हमारे (दुच्छुनाम्) राक्षस को, हम से (आरे) दूर (बाधस्व) पीड़ित कीजिए ॥ १ ॥

(अग्निः) अग्नि (ऋषिः) सर्वत्र व्याप्त है (पवमानः) शोधक है (पाञ्चजन्यः] चारों वर्णाश्रमी और तदितर जन एवं पाँचों प्रकार के मनुष्यों में कार्य साधक है, (पुरोहितः) ऋत्विगादिकों से अपने संमुख इष्टसिद्धि के लिए रक्खा जाता है (तम्, महागयम्) [illegible] विद्वानों से स्तुति के योग्य अग्नि से हम [ईमहे] धनादि की याचना करते हैं ॥ २ ॥

हे [अग्ने] अग्ने तू [स्वपा.] सुन्दर काम करने वाला है [अग्ने] हममें [सुवीर्यम्] अच्छे बल वाले [वर्च] तेज को [पवस्व] प्राप्त कराओ । [मयि] मुझ मे [रयिम्] धनादि को और [पोषम्] गवादि की पुष्टि को [दधत] धारण करो ॥ ३ ॥

[प्रजापते ०] इस मन्त्र का अर्थ पूर्व आ गया है ॥ ४ ॥

[पृ४ २] हे (अग्ने) प्रकाशमान राजन् ! तू (विद्वान्) हमारे सब कार्यों को जानने वाला है (देवस्य) दिव्य गुणों वाले (परमात्मा) परमात्मा के (हेळ) अनादर से (त्वम्) तू (नः) हम को (अवयासिसीष्ठाः) पृथक् रख, अर्थात् आप हम ऐसा करें जिस से हम ईश्वर की आज्ञानुकूल चलें (यजिष्ठ) अतयज्ञ करने वालों में श्रेष्ठ और (वह्नितमः) अग्निहोत्रादि उपयोगी पदार्थों के प्राप्त कराने वाले और (शोशुचानः) प्रकाश करने वाले हो अतः तुम (अस्मत्) हमसे (विश्वा, द्वेषांसि) सम्पूर्ण द्वेष के कारण पापों को (प्रमुमुग्धि) अच्छी तरह से छुड़ाओ ॥ १ ॥

हे (अग्ने) प्रकाशमान राजन् (स,त्वम्) पूर्वोक्त गुणों वाला तू (ऊती) अपने आगमन से (नः) हमारा (अवमः) रक्षक (भव) हो और (अस्याः,उषसः) इस प्रभातकाल के (व्युष्टौ) अग्निहोत्रादि कामों में (नेदिष्ठः) निकट हो । (नः) हमारे (वरुणम्) आवरण करने वाले पाप को (अवयक्ष्व) नष्ट करो और (रराणः) यज्ञ करने वालों के लिये अत्यन्त फल देने वाले आप (मृळीकम्) सुखकारने वाले इस हविः शेषभाग को (वीहि) स्वीकार कीजिये और (नः) हमारे (सुहवः) सुन्दर आह्वान से युक्त (एधि) हो ॥ २ ॥

हे (वरुण) प्रशंसनीय पराजन्‡ । (मे) मेरे (इमम्,हवम्) इस स्तुति समूह को (श्रुधि) आप सुनें (च) और (अद्य) आज यज्ञ दिनमें (मृळय) हम सब को सुखी करें (अवस्युः) अपनी रक्षा की इच्छा करता हुआ मैं (त्वाम्) आप की (आ, चके) सन्मुख स्तुति करता हूं ॥३॥

हे (वरुण) जगदीश्वर ! (ब्रह्मणा) वेद से (वन्दमानः) स्तुति करता हुआ मैं (तत्) उस आयु को (त्वा) तुझसे (यामि) चाहता हूं (तत्) उसी आयु को (हविर्भिः) शाकल्य आदि से (यजमानः) यज्ञ करने वाला (आशास्ते) चाहता है । (इह) इस यज्ञार्थ कर्म में (अहेडमानः) हमारा अनादर न

‡ इस स्थान में ईश्वर वा विद्वान् का भी ग्रहण हो सकता है ।

करता हुआ तू (बोधि) हमारी इच्छा को समझ। हे (उरुशंस) बहुतों से स्तुति करने के योग्य। (नः) हमारे (आयुः) जीवन को (मा, प्रमोषीः) मत नष्ट कर ॥ ४ ॥

हे (वरुण) स्वीकार योग्य जगदीश्वर! (ये, ते) जो वे (शतम्) सैकड़ों और (ये, सहस्रम्) जो हज़ारों [यज्ञियाः] यज्ञसम्बन्धी (महान्तः) बड़े (पाशाः) प्रतिबन्धक-रुकावट (विततः) फैले हुए हैं (तेभिः) उनसे (नः) हमको (अद्य) आज (सविता, उत, विष्णुः) सर्वोत्पादक और व्यापक आप और (विश्वे, स्वर्काः, मरुतः) सब अच्छे पूजनीय देवता विद्वान् लोग (मुञ्चन्तु) छुड़ावें ॥ ५ ॥

[पृष्ठ ३४] हे (अग्ने) भौतिक अग्ने! [त्वम्] तुम (अयाः) बाहर और भीतर सर्वत्र स्थित (असि) हो (च) और (अनभिशस्तियाः) जिनके दोष न रहे ऐसे प्रायश्चितयोग्य पुरुषों के पालक हो (च) और (त्वम्) तुम (अया, असि) कल्याणकारक हो यह बात (सत्यम्, इत्) सचही है हे (अयाः) कल्याणकारक अग्ने! तुम (अयः) हमारे आश्रय होकर (यज्ञम्) यज्ञके साधन चरु आदि को जलादि देवताओं के लिये [वहासि] लेजाते हो इस लिये [नः] हमारे लिये [भेषजम्] दुःख नाशरूप सुख को [धेहि] देओ ॥ ६ ॥

हे [वरुण] स्वीकार करने योग्य ईश्वर! [अस्मत्] हम लोगों में [अधमम्] छोटे और [मध्यमम्] बिचले दर्जे के [उत्] और [उत्तमम्] ऊंचे दर्जे के [पाशम्] बन्धन को [व्यवश्रथाय] अच्छे प्रकार नष्ट कीजिये [अथ] और हे [आदित्य] अविनाशी ईश्वर! [तव, व्रते] तेरे आज्ञा पालन रूपी व्रत में स्थित [वयम्] हमलोग [अनागसः] अपराध रहित हो कर [अदितये] मुक्ति सुख के लिये [स्याम] नियत होवें ॥ ७ ॥

[नः] हम लोगों के बीच में [अरेपसौ] पापरहित [समनसौ] समान मन वाले अर्थात् एक दूसरे के सहायक [सचेतसौ] समान [illegible] स्त्री पुरुष [भवतम्] हों और वे दोनों [यज्ञम्] यज्ञ का [मा, हिंसिष्टम्] लोप न करें और [मा, यज्ञपतिम्] यज्ञों के पालक को भी पीड़ा न पहुंचावें। [अद्य] आज यज्ञ के दिन, ऐसे ही स्त्री पुरुष [नः] हमारे लिए [शिवौ] शान्तरूप [भवतम्] हों ॥ ८ ॥

# वामदेव्य गान

[पृ० ३५] [सदा वृधः] सर्वदा वृद्धि को प्राप्त होने वाला [चित्रः] पूजनीय [सखा] मित्रभूत, इन्द्र-परमात्मा [कया, ऊती] कैसी रक्षा से और [कया,-वृता] कैसे बर्ताव से [नः] हमारे [आ, भुवत्] संमुख हो ? (उत्तर) [शचिष्ठया] श्रेष्ठ बुद्धि युक्त से । परमात्मा ने इस मन्त्र में प्रश्नोत्तररूप से जीवों के प्रति यह उपदेश किया है कि परमात्मा की अनुकूलता, अच्छे बुद्धि युक्त बर्ताव और अपनी आप रक्षा—चौकसी के बिना नहीं हो सकती ॥ १ ॥

[दृढा, चित्] दृढ भी [वसु] शत्रुओं के किले आदि को [आरुजे] तोड़ने को (मदानाम्) हर्षकारी वस्तुओं के बीच में [मंहिष्ठः] सर्वोत्तम [सत्यः] यथार्थ, प्रसन्न करने वाला [कः] कौन है जो हे जीव ! [त्वा] तुझे [मत्सत्] हर्षित करे ? (उत्तर) [अन्धसः] केवल अन्न का रस । पुष्टि कारक और शत्रुओं के बल का नाशक अन्न से बढ़ कर कोई नहीं, इस बात का उपदेश प्रश्नोत्तररूप से इस मन्त्र में है ॥ २ ॥

हे परमात्मन् ! तुम [सखीनाम्] समान प्रसिद्धि वाले साधारण प्राणियों के और (जरितॄणाम्) ज्ञानादि से वृद्ध असाधारण प्राणियों के (अविता) रक्षक हो अतः तुम (नः, शतम्) हम सैकड़ों प्राणियों को (ऊतये) रक्षा के लिए (सु, अभि, भवासि) अच्छे प्रकार, अभिमुख होओ ॥ ३ ॥

## सामान्यप्रकरण पर एक दृष्टि—

**यज्ञ देश** उपद्रव रहित ऐसे स्थान में यज्ञ करना चाहिये जिस की वायु तथा भूमि पवित्र हो । यद्यपि पुराने समय में मकानों की रचना इस प्रकार की होती थी कि उन के आस पास आज कल के बँगलों की नाईं कुछ न कुछ ख़ाली भूमि रहे । अथवा जैसे दक्षिणी लोग मकान के द्वार के बाहर कुछ ख़ाली भूमि रखते हैं । उत्तर हिन्द में मकानों के बीच में आँगन (खुली जगह) प्रायः होती है और कभी २ इस आँगन में नीम का पेड़ लगाते हैं । आज कल कई जगह किराये के लोभ से जो मकान बनाये जाते हैं उन में कहीं भी खुली जगह रखने की मर्यादा नहीं रही । ऐसी अवस्था में हवन कोठड़ियों और कमरों ही में करना पड़ता है और जिस मकान के चारों ओर खुली जगह तथा बीच में आँगन है

वह मकान सर्वोत्तम प्रकार का होने से यज्ञ का उत्तम स्थान हो सकता है। वेद मन्त्रोंमें मकान बनाने का जो विधान है जैसे गृहाश्रम प्रकरणके अन्तर्गत शाला कर्म विधि में पाया जाता है उससे यही सिद्ध होता है कि मकान के चारों ओर द्वार हों और ये तभी हो सकते हैं जबकि चारों ओर खुली जगह हो। यज्ञ का त्याग करने से लोग मकानों के बीच में आंगन और चारों ओर खुली जगह रखना भूल रहे हैं।

यज्ञ शाला कच्ची भूमि की इस लिये बनाई जाती है कि भिन्न २ संस्कारों के अवसरों तथा अपनी शक्ति के अनुसार न्यूनाधिक-आहुतियों के लिये, तदनुसार छोटा या बड़ा हवन कुण्ड बनाया जा सके। यदि एक सहस्र आहुतियें किसी समय देनी अभीष्ट हों तो यज्ञ कुण्ड उसी के परिमाण में बनाना होगा परन्तु दूसरे समय यदि लक्ष आहुतियें देने का सामर्थ्य हो-गया तो उस छोटे से हवनकुण्ड से काम नहीं चल सकेगा। चूना, गच्च, पत्थर व पक्की ईंटों की यज्ञशाला बनाने में कुण्डका प्रमाण बदलते समय उस को तोड़ने आदि में निस्सन्देह बहुत द्रव्यहानि होगी।

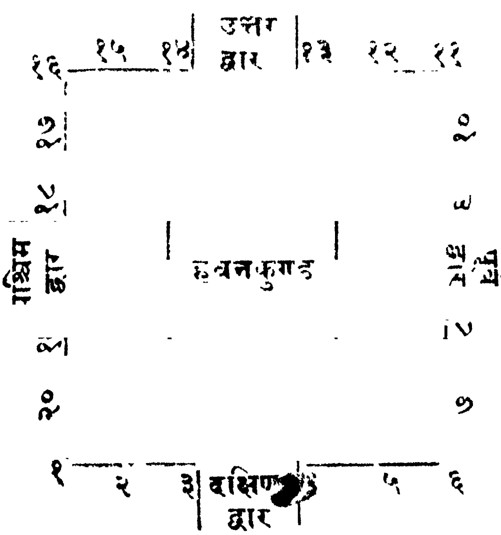
**यज्ञ शाला** यज्ञ शाला विषयक लेख पारस्कर गृह्य सूत्र के गदाधर भाष्य में देखना चाहिये। ( पारस्कर सू० कां० ४ कां० १ । )

**मङ्गलेषु च सर्वेषु मण्डपो गृहवामतः। कार्यः षोडशहस्तो वा न्यूनहस्तो दशावधिः॥ स्तम्भैश्चतुर्भिरेवात्र वेदीमध्ये प्रतिष्ठितः।**

इत्यादि वाक्यों के आधार से संस्कार विधि में यज्ञशाला का विधान किया गया है उस के भेद और प्रकार यह हैं:—

[१] सोलह हाथ लम्बी १६ हाथ चौड़ी निम्न खचित चित्रानुसार जिस में २० खम्भे छाया करने के लिये हों -

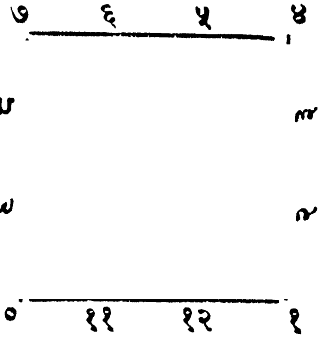
इस चित्र में दक्षिण की ओर समान अन्तर पर ६ खम्भे लगाये गये हैं।




इन में तीसरी और चौथी संख्या के खम्भे दक्षिण दिशा के द्वार का काम देंगे। पूर्व की ओर पाँच अन्य खम्भे लगाये जावें और इन में आठवीं और नवीं संख्या के खम्भे पूर्वदिशा के द्वार का काम देंगे।

इसी प्रकार १३–१४ संख्या के खम्भे उत्तर के द्वार तथा १८–१९ संख्या के खम्भे पश्चिम द्वार का काम देंगे । १६ हाथ लम्बी और १६ हाथ चौड़ी और १० हाथ ऊँची यज्ञशाला को एक अच्छा शामियाना समझना चाहिये परन्तु यह शामियाना चारों ओर से खुला होगा खम्भों के ऊपर फूस आदि से छत्त करनी चाहिये ।

[२] आठ हाथ लम्बी और ८ हाथ चौड़ी यज्ञशाला बनानी हो तो उस में १२ खम्भे होने चाहियें जिस का चित्र उसी नियम के अनुसार निम्न प्रकार है ।




दोनों प्रकार की यज्ञशालाओं के चारों ओर ध्वजा [झंडे] पताका (झंडियें) पल्लव [पत्ते] बांधे तथा बंधन बारी से सुशोभित करें । इस के दो उद्देश्य हैं । एक तो यज्ञशाला को सुंदर बनाना और दूसरे लोगों में यज्ञशाला की सूचना देना ताकि बाहर से आने वाले मित्र अतिथि आदि यज्ञशाला के झण्डों आदि से पहिचान लें और लोगों में ये पताकाएँ विज्ञापन का काम दें । खम्भों के ऊपर छत डालने का उद्देश्य, धूप, वर्षा आदि से वेदी तथा मनुष्यों की रक्षा करना है । पत्ते जो रस्सी में लगाये जाते हैं उस को बन्धन बारी कहते हैं परन्तु यह बन्धनवारी काग़ज़ आदि की नहीं होनी चाहिये किन्तु आम, अशोक, जामन व मौलसरी आदि के पत्तों की होनी चाहिये ।

यज्ञशाला में मार्जन और गोमय आदि से लेपन करने का विधान है ! मार्जन के लिये उत्तम बुहारी ( मार्जनी ) की आवश्यकता है जो भिन्न २ देशों में घास पत्ते, सींक आदि की बनाई जाती है । यज्ञशाला के लिये कच्ची भूमि के विधान करने में दो मुख्य अभिप्राय हैं (१) सुविधा का होना (२) सर्व ऋतुओं में इस पर बैठने से ताप शीत आदि अधिक कष्ट की निवृत्ति । जिस कच्ची भूमि में केवल मट्टी से ही लेपन किया जाता है वह मट्टी के रूखे पन के कारण शीघ्र फट जाता है और पिस्सू नामक जन्तु के रहने को अवकाश देता है । इंजीनिरिंग महकमे में इंजीनियर आदि कच्ची दीवारों तथा फर्शों पर मट्टी तथा गोबर का लेपन कराते हैं ।

हाथी, ऊँट, गधे की लीद् में उतनी चिकनाहट नहीं होती जितना कि गाय भैंस के गोबर में होती है परन्तु भैंस के भी गोबर से अधिक चिकनाहट तथा मट्टी को पकड़ने की शक्ति गाय के गोबर में है। भैंस के गोबर का लेपन गाय के गोबर के लेपन से कम टिकाउ देखा गया है इस लिये मिट्टी के साथ गोमय मिला कर लेपन करना उपयोगी है। गुजरात देश में सब लोग इस बात को भली भांति जानते हैं कि गाय के गोबर में भैंस के गोबर से एक विशेष गुण यह है कि जहाँ गाय के गोबर का लेपन किया जाता है वहां चांचर (पिस्सू) अधिक नहीं आते परन्तु भैंस के गोबर के लेपन से पिस्सू बहुत बढ़ जाते हैं इस लिये गाय, बैल का गोबर अधिक उत्तम है। काठियावाड़ में घोड़े की लीद् प्रायः दीवार बनाने या मिट्टी के लेपन को अधिक पकड़ने के उपयोग में लाई जाती है और उसमें ग्रहण शक्ति गाय के गोबर से अधिक है परन्तु पिस्सू आदि जन्तुओं को वह उत्तमता से निवारण नहीं करती जितना कि गाय का गोबर करता है। बैठने वाले स्थानों पर गाय के गोबर का लेपन अधिक लाभकारी है क्यों कि यह अधिकजन्तु उत्पन्न नहीं होने देता गन्ध भी और पशुओं के गोबर की अपेक्षा इस में कम ही है वेदी के इधर उधर के स्थान को कुंकुम (रोली) हल्दी और मैदा की रेखाओं से सुभूषित करना चाहिये। दक्षिणी गुजराती, पारसी लोगों में वेदी को कुंकुम आदि से सजाने की बहुत प्रथा है पारसी लोग मैदे के स्थान में एक प्रकार की श्वेत पिसी हुई खड़िया काम में लाते हैं और रेखा शृङ्गार को गुजराती लोग साथिया पूरना कहते हैं वेदी के अतिरिक्त पारसी लोग अपने घरके दरवाजों और उनकी सीढ़ियों को शृङ्गारित करते हैं। जो रङ्ग विरंगी रेखायें वेदी को सजाने के लिये खैंची जांय उनके इरद गिरद एक अंगुल चौड़ी हल्दी की रेखा चारों ओर खैंचनी चाहिये क्यों कि चींटियें (पिपीलिका) हल्दी से हटती हैं। और इस लिये हवनकुण्ड में नहीं आसक्तीं।

रेखाओं द्वारा केवल फूल, पत्रके चित्र ही होने चाहियें 'ओ३म्' अथवा मन्त्र लिखने की अवश्यकता नहीं और किसी मनुष्य, पशु पक्षी आदि प्राणी तथा नव ग्रहादि के चित्र की भी आवश्यकता नहीं। मुख्य करके चींटी आदि को शृङ्गारित रेखाओं द्वारा वेदी से दूर रखना भी प्रयोजन है

इस लिये संस्कारविधि में हल्दी, कुंकुम और मैदा से रेखाएँ खेंचने का विधान है। कुंकुम (रोली) हल्दी, चूना और नींबू के रस की बनती है और इसी लिये इस से भी चींटियाँ हटती हैं। मैदा को चींटियें खाती हैं उस का यहाँ रखना भी एक अभिप्राय रखता है। वेदी के बाहर की ओर की जो रेखाएँ हों वे हल्दी की होनी चाहियें। उसके पीछे अन्दर की ओर आनेवाली दूसरी रेखायें वा चित्र रोली के और तीसरी रेखा वेदी के निकट आटे वा मैदे की होनी चाहिये जिस से कि चींटियाँ हल्दी और रोली के रेखाओं से पीछे हटी रहें और यदि कोई हठीली चींटी दैवयोग से इन दोनों रेखाओं के पार आजावे तो आटे वा मैदे के खाने के लोभ में उसी रेखा तक रह जावे और कुण्ड में न जा सके। कई लोग हल्दी कुंकुम और आटा इन से रेखाएँ न खींच कर नाना प्रकार के दूसरे चमकते रँग बजार से ले आते हैं परन्तु ऐसा कभी न करना चाहिये।

## यज्ञकुण्ड का परिमाण।

खुली भूमि पर लकड़ियों का ढेर लगा कर उस में घी और चरु डालने से लकड़ी और सामग्री जल तो सकती है परन्तु वायु के अधिक लगने से एक तो बहुत जल्दी जल जावेंगी दूसरे आग चारों ओर फैल जावेगी जिस से लोगों के वस्त्र और शरीर जलने का भय है तीसरे यह कि घृतादि पदार्थों का अधिकांश भाग बाहर निकल कर व्यर्थ जावेगा अतः वेदी अथवा कुण्ड बनाने की आवश्यकता है जो उक्त दोषों को भली प्रकार निवारण कर सके। जो लोग तापने के लिये कोयले जलाते हैं वह भी नाना प्रकार की अँगीठियें इसी लिये बनाते हैं कि कोयलों की अग्नि, सुरक्षित रहती हुई अधिक समय तक बनी रहे।

यज्ञकुण्ड कई प्रकार के बनाये जा सकते हैं जैसे (१) कूपवत् गोलाकार (२) टीन के डब्बे की नाईं ऊपर नीचे से सम चौरस (३) सन्दूक अथवा पेटी की नाईं लम्बा चौरसा।

कूपाकार हवनकुण्ड बनाने में समिधा और सामग्री का जलना ठीक ठीक नहीं हो सकता। टीन के डब्बे के आकार वाले में कोनों में सामग्री का अभाव हो जाने से जलने की व्यवस्था ठीक नहीं रह सकती। सन्दूक

के आकार के कुण्ड होने में आमने सामने के होता अग्नि के मध्य भाग से अधिक निकट हो जावेंगे जिस से उन को अधिक ताप लगेगा । अब जो कि तालाब के आकार का हवनकुण्ड है वह सब से उपयोगी सिद्ध हुआ है । यह हवनकुण्ड चतुष्कोण इस प्रकार बनाना चाहिये कि उस का तल चारों ओर चार २ अंगुल का हो तो ऊपर को क्रमशः बढ़ते हुए चारों ओर १६ १६ अंगुल हो और गहराई अर्थात् तल से डोरी सीधी खड़ी की जावे तो वह १६ अंगुल होनी चाहिये ।

"संस्कार विधि" में एक लक्ष दो लक्ष, पचास हज़ार, पच्चीस हज़ार दश हज़ार, पांच हज़ार घृताहुतियें देने के हिसाब से विशेष परिमाण के हवनकुण्ड बनाने का विधान है । और उस के आगे चल कर घृत मोहनभोग अथवा खीर की आहुति देने की दशा में उस के दुगने से कुछ अधिक हवनकुण्ड बनाने का विधान किया है जितना कि केवल घृत आहुति के लिये चाहिये था । उदाहरणार्थ २५०० घृताहुतियां देनी हों तो उक्त नियमानुसार ऐसा हवनकुण्ड बनाना चाहिये जिस का तल सवा चार अंगुल और गहराई तथा ऊपर के चारों कोनों की लम्बाई पौन २ हाथ हो । यदि इस के साथ मोहनभोग आदि की आहुति देनी हों तो उस दशा में यदि पौन हाथ समचौरस का दूना किया जाय तो डेढ़ हाथ समचौरस होता है किन्तु 'संस्कारविधि' में दो हाथ गहरा चौड़ा समचौरस कुण्ड बनाने का विधान है जिस का अभिप्राय यह है कि घृत और चरु की मिली हुई अवस्था में उस के दुगने से कुछ अधिक परिमाण का कुण्ड चाहिये जो केवल घृताहुति के लिये बनाना था नैमित्तिक यज्ञों के हवनकुण्डों की बनावट में जो पांच २ अंगुल की मेखला, यज्ञशाला की भूमि से ऊपर को बनाने को लिखा है उस का प्रयोजन विशेष कर यज्ञकर्ता मनुष्यों को आंच का अधिक ताप न लगना है ।

## यज्ञसमिधा—

जो लकड़ी जलने में अधिक धुआँ और दुर्गन्धि न दे वही लकड़ी यज्ञ समिधा का काम उत्तम प्रकार से दे सकती है । जैसे पलाश, शमी पीपल बड़, गूलड़, आम और बेल आदि ।

अफ़गानिस्तान, बिलोचिस्तान आदि देशों में बदाम की लकड़ी भी यज्ञसमिधा में उत्तम प्रकार से उपयोग में आ सकती है । इङ्गलैण्ड आदि देशों में शाहबलूत की लकड़ी से काम ले सकते हैं । और जर्मनी में लेवेण्डर की लकड़ी से तथा इटली में यूक्लिप्टिस की लकड़ी से भी काम लिया जा सकता है ।

## होम के द्रव्य ।

(१) सुगन्धित-यथा कस्तूरी, केसर, अगर, तगर, श्वेत चन्दन, इलायची, जायफल, जावित्री, तुलसी, कपूर, कपूरकचरी, जटामांसी (बालछड़) गूगल, कश्मीरी धूप, छलपुड़ी (छाड़छबीला) लवङ्ग, नागरमोथा आदि सुगन्धित पदार्थ होम द्रव्य के लिये प्रयोग में लाये जा सकते हैं । कस्तूरी के विषय में जहाँ तक हमने आन्दोलन किया है उस से तो यही निश्चित हुआ है कि शिकारी लोग कस्तूरी मृग को कस्तूरी लेने के लोभ से जान से मार देते हैं इस लिये कस्तूरी का उपयोग हिंसापरक होने से उचित प्रतीत नहीं होता । धर्मवीर स्वर्गवासी श्रीयुत पं० लेखराम जी कहा करते थे कि जब कस्तूरीमृग, मद को प्राप्त होता है तो उस समय कस्तूरी की गाँठ को पत्थरों से रगड़ता है तो उस से बहुत कुछ कस्तूरी गिर जाती है और ऐसी गिरी हुई को लेने में कोई भी दोष नहीं । आशा है कि विचारशील आर्य्य पुरुष इस विषय में विशेष आन्दोलन करते रहेंगे । एक समय जब कि मदरास में प्लेग फैल रहा था तो डाक्टर किङ्ग० एम० एस० ने हिन्दू विद्यार्थियों को उपदेश दिया था कि यदि तुम घी और केसर से हवन करो तो महामारी का नाश हो सकता है । अगर, तगर के विषय में कुछ वर्ष हुए कि "सिविल० एण्ड० मिलिटरी ग़जट" लाहौर में बङ्गाल के एक अंग्रेज़ विद्वान् के लेख निकले थे, जिस में उस ने दर्शाया था कि अगर तगर की सुगन्धि से कई प्रकार के विषैले छोटे २ जन्तु वायु में रहने वाले दूर भाग जाते हैं—

श्वेत चन्दन का तेल निकाल कर सूजाक तथा आतशक जैसे भयङ्कर रोग में उस के विष को निवारण करने के लिये अमरीका के कई डाक्टर तथा भारत के वैद्यादि उपयोग करते हैं । इसी प्रकार जटामांसी, जायफल, जावित्री, कर्पूरादि जहाँ सुगन्धित द्रव्य हैं वहाँ इन का धूम, वायु

को शुद्ध करता है बम्बई के प्रसिद्ध मासिक पत्र "सत्य" में तुलसी के मलेरिया नाशक होने के विषय में एक उत्तम लेख निकला है जिस में दर्शाया गया है कि "कई वर्ष हुये बम्बई में एंग्लो इण्डियन अधिकारी सरजार्जवर्डवुड ने "टाइम्स" में एक पत्र लिख कर प्रगट किया था कि जब बम्बई में विक्टोरिया बाग़ तथा एलबर्ट संग्रहालय बनाया गया तब मज-दूर लोगों को मलेरिया ताप आने लगा जब बाग़ के चारों तरफ़ तुलसी बोने में आई तब शीघ्र ही मलेरिया* नष्ट हो गया ।

पंढरपुर में बिठोबा के मन्दिर के आस पास की जगह की आरोग्यता का कारण यही है कि उस के चारों तरफ़ तुलसी का जङ्गल है । ('सत्य' पुस्तक जिल्द १ अङ्क ४ )

## दूसरे पुष्टिकारक पदार्थ ।

**घी, सुगन्धित पदार्थों को तीव्रता और रूखे पन को नाश करता है**

घृत, दूध, फल, कन्द, अन्न, [ चावल गेहूँ, उड़द, जौ,] सुगन्धित पदार्थ, यदि बिना घृत के मिलाये अग्नि में जलाये जायँ तो उन की सुगन्धि में तीव्रता और रूखापन अधिक रहने से जुकाम [प्रतिश्याय] आदि रोग उत्पन्न हो सकते हैं । परन्तु जिस समय सुगन्धित पदार्थ घृत से मिला हुआ जलाया जाता है उस समय जुकाम आदि किसी प्रकार के रोग का भय नहीं रहता और सुग-न्धि की तीव्रता मर्यादा के रूप में आ जाती है । इस लिये शास्त्रों की आज्ञा है कि सामग्री, बिना घृत के मिलाये हवनकुण्ड में न डाली जाय ।

**घी विष नाशक है**

घी का एक अपूर्व गुण यह है कि यह विष नाशक पदार्थ है जैसा कि सुश्रुत में लिखा है ।

प्लेग [ताऊन] का टीका निकालने वाले डाक्टर हेफ़किन का वचन है कि घी विषनाशक पदार्थ है यह हमने अनुभव किया है ।

**घी अग्नि को प्रदीप्त करता है**

घृत अग्नि को प्रदीप्त करता है । घी में अग्नि के प्रदीप्त करने की जो शक्ति है वह सब जानते ही हैं ।

* तुलसी के तीन पत्ते और सात काली मिर्च आधी छटांक पानी में पीस कर प्रातःकाल तीन दिन तक पीना मलेरिया ज्वर को हरता है ।

जब तक अग्नि प्रज्वलित न की जाय तब तक रोग निवृत्ति का पूर्ण साधन नहीं बन सक्ती। मट्टी का तेल, [केरोसिन ऑइल] सरसों अथवा तिल का तेल यह भी अग्नि प्रदीप्त करने के पदार्थ हैं परन्तु यह घृत की अपेक्षा दुर्गन्धि वाले पदार्थ हैं इस लिये कभी भी हवन में जलाने योग्य नहीं। घी के अणु वर्षा वर्षाने के अपूर्व साधन हैं पानी और घी दो ऐसे पदार्थ हैं कि जो सर्दी से जम जाते और गर्मी से पिघलते हैं परन्तु पानी से भी बढ़ कर घी में सर्दी से जम जाने का गुण अधिक है। जैसे कि सर्दी के दिनों में जब कि पानी नहीं जमता परन्तु घी जम जाता है। हवन में जब घी के अणु सूक्ष्म होकर ऊपर चढ़ते हैं तो वायु में डालने वाले बादलों के धरातल के पास ही पहुंच कर स्वयं जम जाने से उन को जमाने और बर्साने का काम देते हैं। पश्चिमीय सायंसदाँ कहते हैं कि बादलों के नीचे के भाग [अर्थात् धरातल] में यदि कृत्रिम रीति से सर्दी पहुंचाई जा सके तो बादल बरस सकता है और इस के लिये वह कई प्रकार के पदार्थ उपयोग में लाते हैं किन्तु घी में बादलों के निचले भाग में ठण्ड की जामन लगाने का अधिक गुण है जैसा कि अभी लिख चुके हैं इस लिये विशेष घृत का हवन करने से वर्षा होने में सहायता हो सक्ती है। इस का प्रयोजन यह नहीं है कि घृत के हवन से बादल बन जाते हैं। अनन्त हवन कुण्डों के समान सूर्य की किरणों से समुद्र का जल बादलरूप में आता है।

कई लोग ऐसी आशङ्का करते हैं कि यदि हम हवन न करें तो क्या बादल न बनें और वर्षा न होगी? इस का उत्तर यह है कि वर्षा होने का कारण तो जल का सूक्ष्म से ऊपर जा कर बादल बनना है। हमारा प्रयोजन यह है कि हवन जो घी का मुख्य भाग है वह यदि ऐसी अवस्था में ऊपर पहुंचे जहाँ बादल किसी रूप में हों तो वह अपने जमजाने के स्वभाव को तो छोड़ नहीं सकता और जिस प्रकार पानी की भाप ऊपर जाकर ठंड पाकर जमजाती है अनुकूल गुण अथवा उसके शीघ्र जम जाने का गुण घी के सूक्ष्म रूप में रहेगा जिस से वह वर्षा का सहायक हो सक्ता है निवारक नहीं। हवन का मुख्य प्रयोजन तो वायुमण्डल की शुद्धि है।

दूध, बादाम, केला, नासपाती, मेव, नारियल, तथा नारियल का घृत, शकरकन्दी, यह सर्व पुष्टि कारक पदार्थ हैं इन के जलाने से जल और मिष्ट

के अणु वायु में फैल कर सब रोगों की निवृत्ति करते हुए पुष्टि देते हैं । कोई ऐसा फल जो कि खट्टा अथवा क्षारगुण वाला हो वह हवन में नहीं डालना चाहिये क्योंकि--क्षार (सोडा, सज्जी, नमकादि) और खट्टी चीज़ों के जलाने से अनेक प्रकार के खांसी आदि रोग उत्पन्न होते हैं । अन्न भी घृता-दि के समान पुष्टि कारक पदार्थ है इसी लिये विवाह संस्कार में लाजा होम रक्खा है जिसमें एक प्रकार से चावलों की खीलें घृत के साथ होमकी जाती हैं प्रायः संस्कारों में स्थालीपाक जो बनाया जाता है उस में खीर (दूध में पके हुये चावल) अथवा मोहनभोग (हलुवा) जो कि गेहूं के आटे, घी और शक्कर से बनता है पुष्टि कारक होने से उपयोग में लाया जाता है कभी २ याज्ञिक लोग यव (जौ) भी हवन में डाला करते हैं ।

गेहूं, जौ, चावल, और मोहनभोग यह सब अन्न जब घी के साथ अथवा बिना घी के आग पर भूने जाते हैं तो एक प्रकार की सुगन्धि देते हैं इस लिये उत्तम उत्तम प्रकार के अन्न जो पुष्टि कारक होने के अतिरिक्त सुगन्धित भी हों हवन में डालने चाहियें ।

## तीसरे मिष्टपदार्थ ।

शक्कर, शहद, छुहारे दाख, आदि । सुगन्धित पदार्थों के साथ मिठास रहता है सुगन्धित पुष्पों पर मधुमक्खी फूलों के अन्दर के मिठास के लेने को हां आती हैं शर्करा (शक्कर) गुड़, खाँड, मिश्री के जलने से मन्द२ सुगन्धि आती है परन्तु जब शक्कर खाँड आदि के साथ घी भी जलता है तो सुगन्धि और भी रोचक और उत्तम प्रकार की हो जाती है अमरीका के एक मासिकपत्र में एक विद्वान् ने लिखा था कि आग में शक्कर के जलाने से 'हे फीवर' अर्थात् एक प्रकार के ज्वरों का नाश होता है । छुहारे, खजूर, द्राक्षा आदि फल जिन में मिठास अधिक होता है वह भी हवन में डाले जा सकते हैं ।

## चतुर्थ-रोगनाशक पदार्थ ।

गिलोय भारतवर्ष में "क्वीनाइन" का काम देती है । ज्वर के विष को नाश करती और शरीर को आरोग्यता देती है ।

प्रोफ़ेसर मैक्समूलर साहब की किताब "फिजीकल रिलीजन" के पाठ से विदित होता है कि यवन देश के तत्ववेत्ता सूयकों ने आग को वायु शोधक माना है । और इस पर उक्त प्रोफेसर साहब लिखते हैं कि आग जलाने की रीति गत शताब्दी तक स्काटलैण्ड में पाई जाती थी । तथा आयरलैण्ड और दक्षिणी अमेरिका में महामारी के लिये अग्नि जलाने की प्रथाप्रचलित रह चुकी है मैक्समूलर की पुस्तक के पाठ से सिद्ध होता है कि हवन यज्ञ का प्रचार एक समय सर्वभूमण्डल पर रह चुका है ।

जापान और चीन में होम को घोम कहते हैं और मन्दिरों में सुगन्धित द्रव्य जलाते हैं । जर्मनी में लवेंडर की बत्ती जलाई जाती है । ईरान के पार्सी लोग हवन यज्ञ को हिन्दुओं की तरह उत्तमता से करते हैं ।

## हवन की उपयोगिता में मद्रास के सेनेटरी कमिश्नर का अपूर्व साक्ष्य ।

आर्य लोग जो हवन की आवश्यकता दर्शाते हैं वहाँ पर एक प्रमाण यह भी देते हैं कि प्राणियों के मल मूत्र से दुर्गन्धि उठ कर वायु को अशुद्ध कर देती है उस दुर्गन्धि को आग से दूर करने और आग के द्वारा सुगन्धि फैलाने के लिये जो कार्य किया जाता है वही हवनयज्ञ है । जो अंग्रेज़ी पुस्तक "ब्यूबानिकप्लेग" नामी पायनियर प्रेस प्रयाग से निकली है उस में लिखा है कि २५ मार्च सन् १८९८ को मद्रास यूनिवर्सिटी (महाविद्यालय) के ग्रेजुएट (बी० ए० आदि) विद्यार्थियों को कर्नल किङ्ग आई० एम० एस० सेनीटरी कमिश्नर मद्रास ने एक उपदेश दिया था उस का सारांश हेनकिन महाशय ने "ब्यूबानिकप्लेग" नामी पुस्तक में उन के ही शब्दों में लिखा है हम उस का अभिप्राय यहाँ पर लिखते हैं:—इस पुस्तक के पृष्ठ २२ पर लिखा है कि महाशय कमिश्नर ने भगवती पुराण ( देवी भागवत ) का वर्णन करते हुए बतलाया है कि उस में महामारी का वर्णन है--रोग की दशा में चूहों के गिरने का वर्णन है--और उस के दूर करने के लिये घी चावल और केसर आदि के हवन का विधान है जिस को शान्ति होम के नाम से पुकारा है--और अन्य कई बातें जैसे धूप बत्ती का जलाना आदि भी लिखा है उस पुराण के हवन की रीति को वर्णन करते हुए पुस्तक निर्माता ने प्रकट किया है कि हवन की वर्तमान रीति मेडिकल

सायन्स के अनुकूल है और लिखा है कि हवन का करना लाभदायक और बुद्धिमानी की बात है—इस पुस्तक की भूमिका डवलू एम० हैफ़किन महाशय बम्बई वाले ने लिखी है-इस पुस्तक के पढ़नेसे यह भी ज्ञात होता है कि फ्रान्स देश में रूकस महाशय ने जो टीका प्लेग का माद्दा निर्मित किया था वह अत्यन्त विषैला था हैफ़किन महाशय ने घी में मिलाने से उस का विष दूर कर दिया है इस से सुश्रुत के कथन की पुष्टि डाक्टर हैफ़किन की परीक्षा से हो गई कि घी विषनाशक है ।

## बड़ोदा के महाराज का एक प्रशंसा योग्य कार्य्य ।

बड़ोदा राज्य के सरकारी गज़ट (आज्ञापत्रिका) में श्रीमन्त महाराजा श्री सया जी राव गायक वाड सेना ख़ास खेल शमसेर बहादुर के हुक्म से तथा राज्य के सुयोग्य डाक्टरों की सम्मति द्वारा नीम के पत्तों की धूनी के लाभों पर प्रजा का ध्यान दिलाया गया है । इस की धूनी, रोग मच्छर आदि को दूर करने वाली है । हवन में इस के पत्ते इस लिये नहीं डालते कि इस का धूआँ कड़ुवा होता है । हवन से पूर्व इस की धूनी देने से लाभ ही है ।

मीठा भात, खीर, लड्डू, मोहन भोग यह पदार्थ जो हवन के लिये बनाये जाते हैं इनको 'परिभाषा' में स्थालीपाक कहते हैं । इस मे प्रथम इस बात पर ध्यान दिलाया गया है कि चावल, आटा, घी, शक्कर आदि पदार्थों को पहिले भली भाँति उजाले में देख लेना चाहिये ताकि किसी प्रकार जीता वा मरा हुआ जन्तु अथवा कंकर आदि अनिष्ट पदार्थ रह न जाय और चलनी आदि से छानने, धोने सुखाने तपाने आदि अनेक प्रकार की यथायोग्य क्रियाओं से शुद्ध कर लेना चाहिये फिर मोहन भोग इन से बनाना चाहिये ।

आटा अथवा मैदा २ सेर में, घी १ सेर, मीठा २ सेर जल ४ सेर, केशर १ माशा जायफल १ माशा, जावित्री १ माशा, सेर भर दूध की खीर बनाने के लिले चावल १ छटाँक मीठा १॥ छटाँक इलायची ३ माशे होनी चाहिये ।

एक सेर, बेसन अथवा आटे के लड्डू बनाने के लिये सेर भर घी, ६ मासे इलायची, मीठा १४ छटाँक, होने चाहियें । मीठे भात के लिये जितने चावल हों उतना ही मीठा डालना चाहिये ।

'संस्कार विधि' में स्थालीपाक शीर्षक के नीचे जो मन्त्र दिया है उस में से "ओ३म् देवस्त्वा सविता पुनातु" इतना भाग यजुर्वेद अ० १-मं० ३ का है और शेष का पता नहीं चलता ।

इस मन्त्र में बतलाया है कि सूर्य पदार्थों को पवित्र करता है और यज्ञ के पदार्थों में कोई छिद्र अर्थात् अनिष्ट पदार्थ न रह जाय इस लिये सूर्य की रश्मियों में अर्थात् उजाले में पदार्थों को देख भाल तथा शुद्ध कर लेना चाहिये रात को अथवा अन्धकार में पूरीशुद्धि नहीं हो सकती । "अग्नये त्वा जुष्टं निर्वपामि"—यह विधि चरु बनाने की है इस का अर्थ यह है कि अग्नि के लिये तुझ को प्रीति से डालता हूँ इस का अभिप्राय यह है कि-अग्निहोत्र के लिये जो सामग्री तय्यार की जाय वह बेगार काटने की तरह न हो किन्तु मन लगा कर उस सामग्री को उचित परिमाण में शुद्ध करके डालनी चाहिये । 'अग्नये त्वा जुष्टं प्रोक्षामि'— अर्थात् तुझ अग्नि के लिये प्रीति पूर्वक छोड़ता हूं अर्थात् जिस समय आग के ऊपर बर्त्तन में पकने के लिये स्थालीपाक डाला जाय उस समय भी मन लगा कर पाकविधि को पूर्ण करना चाहिये ।

## यज्ञपात्रों के लक्षणः—

यज्ञपात्रों के लक्षण, आपस्तम्बीय यज्ञपरिभाषा सूत्र, शाङ्खायन श्रौतसूत्रादिकों के अनुसार लिखे गए हैंः—

चार प्रकार की स्रुक् होती हैं ( "ध्रुवोपभृज्जुहूनां तु स्रुवो भेदाः स्रुचः स्त्रियामिति श्रौतव्यवहारमूलक कोशाद् ध्रुवोपभृज्जुहूस्रुवाणां चतुर्णां वाचकः स्रुक्शब्दः" इति श्रौतपदार्थनिर्वचनकारः पृ० ११ ) १ ध्रुवा, २ उपभृत्, ३ जुहू, ४ स्रुव । ये चारों स्रुचाएँ डेढ़ २ हाथ मात्र लम्बी हों, हाथ के चिह्न के बराबर जिनके मुख का गहराव हो, त्वग् भागकी ओर से जिनका मुख ६ अंगुल खोदा गया हो अर्थात् चीर कर भीतर से जिन का मुख न खोदा हो, तथा हंस के मुख के समान घृत गिराने के लिये एक ढालू पनाली जिन में बनी हों और मूल की ओर जिनका दण्ड हो अर्थात् काष्ठ के अग्रभाग की ओर उन में मुख किया गया हो, ऐसी स्रुचा होनी चाहिएँ । "जुहू" ढाक की लकड़ी की बनानी चाहिए । "उपभृत्"

पीपल की लकड़ी की और "ध्रुवा" विकङ्कत वृक्ष (कटाई) की तथा "स्रुव" खदिर ---खैर (जिस का कत्था बनाया जाता है) का बनाना चाहिये। जिस से अग्नि में आहुतियां दी जावें उसे "जुहू" कहते हैं, जुहू के पास रहने वाली स्रुचा का नाम "उपभृत्" है इसे अध्वर्यु अपने बायें हाथ में रखता है। "ध्रुवा" यह जुहू जैसी होनी चाहिये हवन के लिए घी इस में रक्खा जाता है, यज्ञ समाप्ति पर्यन्त बराबर रक्खी रहती है। 'स्रुव' यह २४ अंगुल लम्बा होना चाहिए, अँगूठे के पोरे के प्रमाण इस का गोल बिल होना चाहिए, यह भी घृत डालने के काम में आता है। यदि अधिक आहुति देनी हों तो दूसरा 'स्रुव" विकङ्कत का बनाना चाहिए। "स्रुव" विशेषतया दर्श पौर्णमासादि इष्टियों में ही काम आता है। " अग्निहोत्र हवणी" साधारण अग्निहोत्र में काम आती है। यह लम्बाई में २४ अंगुल की बनानी चाहिए और इसका आठ अंगुल परिमाण का गोलबिल होना चाहिए इसी "अग्निहोत्र हवणी" में "प्रोक्षणी" नामक जल, जिनसे चावल आदि शुद्ध किए जाते हैं-प्रोक्षित होते हैं, रक्खे रहते हैं।

अग्नि होत्र हवणी के नीचे रखने के लिए, डेढ़ हाथ लम्बा, मगर कीसी मूर्तिका, वरना--वारुणी वृक्ष (इसके पत्ते कड़ुवे होते हैं) का "कूर्च" बनाना चाहिए।

२४ अँगुल का खैर के वृक्ष का तलवार जैसा "वज्र" बनाना चाहिए यह छुवारे आदि तोड़ने के काम में आता है। जो होम के समय में काम नहीं आते ऐसे यज्ञपात्र--ओखली मूसल आदि, सामान्यतया वरना वृक्ष के बनाने चाहिएँ। उलूखल-ओखली, नाभि के बराबर हो और मूसल शिर के बराबर। अथवा मूसल और उलूखल, किसी ठोस काष्ठ के सुन्दर, जैसे लम्बे चौड़े इष्ट हों वैसे ही बना लेवें। इस विषय में याज्ञिक लोग कहते हैं—मूसल खैर का और उलूखल ढाक का हो अथवा दोनों वरना के हों यदि खैर और वरना न मिलें तो अन्य किसी वृक्ष के बनाये जायँ शूर्प-सूप (छाज) बाँस का ही हो अथवा सिर की या नल नामक घास का हो पर उस में चमड़ा न लगाया जाय। यज्ञ में चावल आदि जो हवि के काम में आते हैं उनके तुष आदि को हटाने के लिए यह बनाया जाता है। १२ अंगुल लम्बी, वरना वृक्ष की एक "शम्या" बनाई जाती है।

यह हविष् के पेषण समय में शिला के नीचे उत्तर को अग्रभाग करके लगा दी जाती है। जिस से शिल ऊँची रहे ।

काले हरिण का चर्म, यज्ञोपयोगी चावल आदि के कूटने के समय में ओखली के नीचे रक्खा जाता है उसे "कृष्णाजिन" कहते हैं; वह खण्डित न हो। शिला और लोढ़ा, यज्ञोपयोगी सामग्री पेषण के लिए पत्थर के बनाये जायँ। हुत हविष् के शेष भाग को, जो इडा पात्र में रक्खा जाता है 'इडा' कहते हैं। "इडा पात्र" में यजमानादि के लिए पाँच भाग निकाल कर रक्खे जाते हैं। यह 'इडा पात्र' वा 'इडा पात्री' वरना वृक्ष की, १॥ हाथ की वा २४ अंगुल लम्बी, बीच में खुदी हुई और बीच में पतली होनी चाहिए। यही 'पञ्चावत्त इडा' कहलाती है। ब्रह्मा, होता यजमान और उसकी धर्मपत्नी के लिए २४ चौबीस २ अंगुल के चतुष्कोण आसन पटड़े बनाने चाहिएँ। मुञ्ज-मूंज की, तीन लर वाली, दोनों भुजाओं के बीच का जितना परिमाण है उतनी लम्बी चौड़ी एक रस्सी बनाई जाती है। अध्वर्यु के कहने से 'आग्नीध्र' इसे यजमान पत्नी को कटिदेश में पहरने के लिए देता है। इसी का नाम "योक्त्र" है। १२ अँगुल लम्बी और ८ अँगुल चौड़ी, ६ अँगुल बीच में खुदी हुई दो "पुरोडाश पात्री" हविष् के धरने की बड़ी पात्री (वर्तन) बनानी चाहिएँ। १२ अँगुल लम्बा, २ अँगुल चौड़ा, अग्रभाग जिसका तेज हो ऐसा "शृतावदान" बनाना चाहिए। शृत पके हुए पुरोडाश के अवदान-टुकड़े करने में यह काम देता है।

दर्पण के तुल्य-गोल, वा चमस ( सोमरस पीने का पात्र वा चम्मच ) के तुल्य चौकोन "प्राशित्र हरण" नामक पात्र बनाना चाहिए इसी में ब्रह्मा के लिए हविर्भाग रक्खा जाता है। दोनों ओर खाने वाला, कंघी के आकार जैसा ६ अंगुल का (या १२ अंगुल का) "षडवत्त" पात्र बनाया जाता है जिस में "अग्नीध्" के खाने को दो भाग रक्खे जाते हैं। आधे चन्द्रमा के समान १२ अंगुल का ८ अंगुल ऊँचा एक "अन्तर्धानकट" बीच में बनाना चाहिए। यजमान पत्नियों के आहुति देते समय यह अन्तर्धानकट, अग्नि से बचाव करने के लिये खड़ा किया जाता है। अग्नि के अङ्गार सम्हालने के लिये २४ अंगुल लम्बा एक "उपवेश" नामक पात्र

बनाना चाहिए । रस्सी मुञ्ज की, यज्ञोपयोगिनी है । खैर के १२ बारह २ अंगुल लम्बे, जिन का चार २ अंगुल का मस्तक हो और जिन का अग्र-भाग पैना हो ऐसे "खूंटे" बनाने चाहिएँ ये यज्ञमण्डप बनाने में और यज्ञोपयोगी गौओं के बाँधने के काम में आते हैं । "यजमान पूर्णपात्र" और "यजमानपत्नी पूर्णपात्र" बारह २ अँगुल लम्बे और चार २ अंगुल चौड़े तथा चार २ अँगुल गहरे खुदे हुए बनाने चाहिएँ । इन दोनों पात्रों में हुत हविष् का भाग यजमान और उस की पत्नी के खाने के लिए रक्खा जाता है । पीपल की लकड़ी का, ८ अंगुल गहरा और १२ अंगुल लम्बा "प्रणीतापात्र" बनाना चाहिए । हवन कार्यार्थ अर्थात् कुशों से मार्ज-नाद्यर्थ जल इसी में भ लिया जाता है । "आज्यस्थाली" घृत रखने का पात्र १२ अँगुल लम्बा और १२ अँगुल ही ऊँचा बनाना चाहिए । 'आज्य-स्थाली' जैसी ही "चरुस्थाली" हव्यान्न रखने की पात्री बनवानी चाहिए । "अन्वाहार्यपात्र" ऐसा बनवाना चाहिए जिस में चार पुरुषों (ऋत्विजों) के लिये पर्याप्त भोजन समाजाय । यज्ञ होनेके बाद दक्षिणाग्नि में अन्वा-हार्य पात्र को रख कर अच्छी तरह पकाया हुआ भात आदि, चारों ऋ-त्विज् इसी में से लेकर खाते हैं । अग्नि को पूर्व प्रदीप्त करने के लिए ढाक की वा अन्य योग्य वृक्ष ( पीपल आदि ) की समिधाएँ रखनी चाहिएँ । हविष् पात्रों के नीचे रखने को और वेदी के चारों तरफ फैलाने को कुशों को विशेष रचना से रक्खा जाता है इसी रचना का नाम "बर्हिः" है । ऋत्विजों के वरण के लिये, सोने के कुण्डल और अँगूठी तथा सुन्दर वस्त्र बनवाने चाहिएँ । यजमान और उस की पत्नी को पहिरने के लिए, क्षौम रेशम के चार सुन्दर वस्त्र बनवाने चाहिएँ । जो यज्ञपात्र नहीं हैं वे यज्ञोपयोगी होने से यहाँ प्रसङ्गवशात् लिख दिए हैं । अन्य 'अभ्रि' आदि यज्ञोपयोगी २ ३ पदार्थों का याज्ञिक ग्रन्थों में स्वरूप बतला दिया है । जिन का स्वरूप नहीं बतलाया उन का कल्पना कर लेना चाहिये ।

## यज्ञ पात्र ।

यज्ञ पात्र चाँदी अथवा काष्ठ के बनाने को संस्कार विधि में लिखा है परन्तु उपयोग में काष्ठ के अधिक [illegible] और सस्ते होसकते हैं । इन पात्रों के नाम, प्रकार परिमाण और काष्ठादि की जाति पर विचार, करने

से प्रतीत होता है कि प्राचीन आर्य्यलोग वनस्पति शास्त्र और शिल्प क्रिया में कैसे निपुण थे । एक स्थलपर ऋत्विजों के वरण के लिये सोने के कुण्डल (बाले) और अँगूठी देने का विधान है इस से पाया जाता है कि उस समय पुरोहित लोग कुण्डल और अँगूठी धारण करते होंगे जो कि यथासमय वह इस को बेच कर अन्य उपयोगी पदार्थ लेते हों ।

यजमान और उस की पत्नी के लिये रेशम के वस्त्रों का विधान होने से स्त्रियों को यज्ञ का अधिकार था यह सिद्ध है । रेशमी वस्त्र के यज्ञ समय में दो लाभ प्रतीत होते हैं ।

( १ ) यह कि कहीं दैवयोग से आग लग जाय तो उस से बहुत बचाव हो सके क्योंकि रेशम और ऊन के बने हुए वस्त्रों का यह गुण है कि ऊन में आग थोड़ी जगह में जलकर बुझ जाती है और अधिक नहीं बढ़ती ( २ ) यह कि गर्मी की ऋतु में रेशमी वस्त्र धारण करने से पसीना अधिक नहीं आता । रेशम कई प्रकार से बनाया जाता है एक प्रकार ऐसा है कि जिस में कीड़े मारे न जायँ और प्राप्त होसके परन्तु आज कल लोभी लोग कीड़ों को प्रायः मार ही देते हैं ।

यज्ञ पात्रों की सूची देख कर कई लोग कहदेते हैं कि यज्ञ करने केलिये इतना जगड्वाल कौन करे पन्तु यह उन की भूल है वह दफ़्र बनाने के लिये कुर्सियें, मेजें, अलमारियें, दरियें, सन्दूक, दवात, कलम, कागज़, पेपर-वेट, रजिस्टर (पत्रक) फाइल (तार) घड़ी, केलेंडर चिक, पंखा, रग, आदि अनेक पदार्थों को कभी जगड्वाल नहीं कहेंगे जहाँ कि उन को बैठ कर लिखने का काम करना है । जब लिखने के काम के लिये एक कमरा और इतने सामग्री की आवश्यकता है तो हवन करने के लिये यज्ञशाला और यज्ञ पात्रों की क्या आवश्यकता नहीं ?

## ऋत्विग्वरणम् ।

यजमान ऋत्विज् को काम करने के लिये और अपने आसन (सीट) पर बैठने के लिये प्रार्थना करे । आज कल भी सभ्य संसार में कोई सभा समाज हो तो वहां सभापति को आसन ग्रहण करने इत्यादि के लिये प्रार्थना की जाती है और सभापति उसका उत्तर स्वीकृति में देता है । यहाँ भी यजमान और ऋत्विज् को ऐसे ही कार्य्य करने के लिये विधान है ।

आगे चल कर होता, अध्वर्य्यु, उद्गाता और ब्रह्मा, का आसन वेदी के चारों ओर लगाने का विधान है अर्थात् होता का आसन पूर्वमुख हो, अध्वर्य्यु का दक्षिण मुख, उद्गाता का पश्चिममुख और ब्रह्मा का उत्तरमुख शङ्का करने वाला कह सकता है कि इन आसनों का क्रम बदला जाय तो क्या दोष है! इसके उत्तर में हम कहेंगे कि जो क्रम आप निश्चय करेंगे उस पर भी यह शङ्का की जा सकती है कि वह क्रम बदला जाय तो क्या दोष है! अन्त को अव्यवस्था हो जायगी। व्यवस्था को और उपयोगिता को दृष्टि में रख कर ऐसे आसनों का क्रम कार्य्य सिद्धि के लिये निश्चय किया गया है।

आगे तीन मन्त्रों से आचमन करने का विधान है। युरोप आदि देशों में यह रीति है कि जब कोई वक्ता कोई विशेष बोलने का काम करने लगता है तो उसकी मेज़ पर पानी का गिलास किसी समय पर पीने के लिये रख दिया जाता है जोकि उसको आचमन का काम देता है। पुराने आर्य्य लोगों ने वेदपाठ इत्यादि के आरम्भ से पूर्व ही आचमन करना कण्ठ कोमलता आदि के लिये नियत किया था और बीच बीच में कई बार किसी क्रिया का कोई अङ्ग समाप्त कर लेने पर वह आचमन करते थे।

आचमन के पहिले मन्त्र में जल को अमृत और प्राणों का आधार बतलाया गया है। इस बात को स्मरण में रखने और तदनुसार आचरण करने से कितने शारीरिक रोग नष्ट हो सकते हैं। कितना रुपया और श्रम लोगों को इस बात के समझाने पर लगता है कि लोग गन्दे कूओं, सड़े हुए तालाबों और ख़राब नदियों का पानी, जो विषरूप है उपयोग में न लावें। जल को अमृत दशा में रखने के लिये कई स्थलों में (Water works) अर्थात् नल भी जारी किये जाते हैं। जिन नलों में कुओं अथवा तालाबों का पानी आता है यदि वह कूप और तालाब अमृत जल से भरपूर नहीं है तो नल का पानी भी क्या कर सकता है! पुराने समय में खुले जंगल में किसी बाग़ अथवा स्वच्छ स्थान में पीने के कूप खोदे जाते थे। और उन को स्वच्छ रखना धर्म्म का अङ्ग समझा जाता था। परन्तु आज स्वच्छता का भाव विद्या हीन होने से नष्ट हो रहा है और पानी अमृत के स्थान में विष सा बन रहा है। स्वच्छ अथवा निर्मल जल की महिमा को नित्य प्रति स्मरण कराने के लिये आचमन का यह पहिला मन्त्र पढ़ा जाता था।

दूसरे आचमन मन्त्र में जल को निश्चित रीति से पोषक कहा गया है। आज लोग शराब आदि पदार्थों को पौष्टिक समझते हुए निर्मल जल का महत्त्व भूल गये हैं। किन्तु जिस समय आर्य्य लोगों को नित्य प्रति स्मरण कराया जाता था कि जल पौष्टिक वस्तु है तो उस समय मद्य-पान आदि का प्रचार देश में न था। जापानी लोग पीने के जल पर बहुत ध्यान देते हैं। और कहा जाता है कि उन के शारीरिक बल का एक मुख्य कारण निर्मल जल भी है।

तीसरे आचमन मन्त्र में बताया है कि शारीरिक पुष्टी का उद्देश्य सत्य प्राप्ति और शुभ कामों के करने से कीर्ति और धर्म्मानुकूल धन प्राप्ति है। सत्य और उत्तम कर्म द्वारा धन प्राप्ति की यज्ञ करने कराने वालों के लिये भारी आवश्यकता है इस को बार २ स्मरण कराया जाता था।

आगे सात मन्त्रों से जल द्वारा अङ्गस्पर्श करने का विधान है। रात को कोई मनुष्य गाढ़ निद्रा में सो रहा हो तो उस के सामने कितने दीपक और कितनी ही आवाजें दी जायँ तौभी उस का उठना कठिन है परन्तु आप जल के छींटे बिन बोले उस के किसी अङ्ग पर डाल दीजिये तुरन्त उठ खड़ा होगा। इस से सिद्ध हुआ कि आलस्य निवृति के लिये जल बड़ा उपयोगी है। यज्ञ करने वाले आलस्यतन्द्रा आदि दोषों में ग्रस्त न हो जायँ इस लिये जल के छिड़कने की आवश्यकता है। जल रुधिर के कोप को शान्त करता है जिस पुरुष को क्रोध चढ़ रहा हो उस को ज़रा हाथ मुंह धुला दीजिये फिर देखिये कि क्रोध कहाँ तक शान्त होता है। इस लिये न केवल आलस्य किन्तु नाना अङ्गोंमें शान्ति संचार के लिये भी जल छिड़का जाता है। बौद्ध लोगों ने मार्जन की यह रीति उत्तम बतलाई है और उन के अनुयायी ईसाई लोगों ने शिरोमार्जन अथवा बपतिस्मा को धर्म का अङ्ग ठहराया है।

मार्जन के पहिले मन्त्र में मुख तथा वाक् इन्द्रिय को आरोग्य रखने की स्मरणरूपी प्रार्थना है। दूसरे में घ्राण इन्द्रिय, तीसरे में नेत्र तथा चक्षु इन्द्रिय, चौथे में दोनों कान तथा श्रवण इन्द्रिय, पाँचवें में दोनों भुजायें तथा बल शक्ति, छटे में दोनों जङ्घाएँ तथा वेग पराक्रम, सातवें में सारी देह और उस के सब अवयव।

आज कल लोग उपहास करते हैं कि पुराने आर्य्य केवल मृत्यु का ही चिन्तन करते थे। शरीर उन्नतिके शत्रु थे। परन्तु इन सात मन्त्रों को नित्य प्रति स्मरण करने वाले आर्य्य कहाँ तक शारीरिक उन्नति के महत्त्व को समझे हुए थे इस पर अधिक लेख करने की आवश्यकता नहीं। आज कल स्कूलों में सैनेटरी प्राइमर्स (Senctry Primers) पढ़ने वाले स्वच्छ जल और आरोग्यता के नियमों को कुछ समझते हैं परन्तु पुराने समय में यह दश मन्त्र हाईजीव के मुख्य सिद्धान्तों का काम देते थे ( Will Power) मानसिक शक्ति पर किताबें लिखने वाले अमरीका आदि सभ्य देशों में बतलाते हैं कि यदि मनुष्य रोगी है और वह ऐसी इच्छा नित्य-प्रति करे कि मेरे अमुक अङ्ग में रोग न रहे तो उस की इच्छा शक्ति इस प्रकार के अभ्यास से बहुत प्रबल हो जावेगी और वह उन साधनों को उपयोग में ला सकेगा जिस से स्वस्थ रह सकता है। प्रार्थना का वह एक बड़ा फल मानसिक शक्ति को प्रबल करना मानते हैं। परन्तु इन सात मन्त्रों में न केवल शारीरिक उन्नति के महत्त्व का ही स्मरण कराया गया है किन्तु इच्छा शक्ति को प्रबल करने का मानो अभ्यास करा रहे हैं। प्रार्थना करने का फल मानसिक बल की प्राप्ति है। और इसी लिये वेदों में प्रार्थना की शैली प्रायः बहुत से मन्त्रों में देखने में आती है कई मत ऐसे हैं जो प्रार्थना से अन्तःकरण की शुद्धि के अतिरिक्त और कुछ भी मानते हैं। परन्तु पुराने आर्य्य प्रार्थना, उपासना आदिसे अन्तः-करण की पवित्रता और उसमें बल प्राप्ति होना मानते चले आये हैं।

## समिधा चयन।

"ओ३म् भूर्भुवः स्वः" यह नाम परमात्मा के हैं। इन का उच्चारण कर के द्विज के घर से अग्नि लाने अथवा घृत दीपक जला उस से अग्नि प्रज्वलित करने का विधान है। पुराने समय में द्विजों के घर में गार्ह्य-पत्य अग्नि पारसियों की अग्यारी की तरह सदैव जागृत रहती थी। गुण कर्म्म से जो शूद्र होते थे वह इस अग्नि को जागृत नहीं रख सकते थे और न अब कोई गुण कर्म्म से बना हुआ शूद्र उतने कर्तव्य पालन कर सकता है जितना कि द्विज।

दूसरी विधि घृत का दीपक जला कर अग्नि जलाने की कही गई है। केरोसिन आयल कोलगेस आदि के दीपक, घृत दीपक की अपेक्षा अधिक दुर्गन्धि वाले होते हैं इस लिये हवनकुण्ड के समीप इन का जलाना ठीक नहीं मोमवत्ती में दुर्गन्धि प्रायः नहीं होती परन्तु सब मोमबत्तियें चर्बी के मेल से बनाई जाती हैं। और चर्बी बिना हिंसा के प्राप्त नहीं होती। जहाँ घृत न मिल सके वहाँ नारियल का घृत उपयोग में ला सकते हैं जैसे कि बंगाल में नारियल के घृत के दीपक जलाते हैं। यह तो आपत्काल की बात रही, सदैव घृत का ही दीपक जलाना नारियल के घृत से अधिक लाभ दायक है।

आगे जिस मन्त्र को पढ़ कर अग्नि रखने को कहा है उस मन्त्र में अग्नि के गुणों का विधान है। दूसरे मन्त्र को पढ़ कर व्यजन ( पंखे ) से अग्नि प्रदीप्त करने को कहा है उस मन्त्र में अग्नि के वैसे ही उत्तम गुणों का विशेष विधान है अर्थात् बतलाया गया है कि हे अग्ने! तू भली प्रकार प्रकाशित हो। इस से पाया जाता है कि अत्यन्त जलती हुई, आग में हवन करने की आज्ञा है और किसी प्रकार की बुझी हुई अथवा मन्द अग्नि में हवन करने का निषेध है। डाक्टर भगलराम साहनी एम० डी० कश्मीर ने जो प्लेग निवारक अँगीठी बनाई थी उसका मूल आधार यही नियम था कि अग्नि की ज्वाला बहुत प्रचण्ड रूप धारण कर सके क्यों कि प्रचण्ड अग्नि में ही मलिन वायु को गरम करके दूर भगाने की शक्ति अधिक रहती है। इस मन्त्र में, अग्नि सहित स्थानों में रहने का विधान होने से पुराने आर्य्यों में अग्नि को सदैव घर में जागृत रखने के उपाय किये थे।

अगले मन्त्र में जिस से पहिली समिधा अग्नि में दी जाती है बतलाया गया है कि अग्नि प्रचण्ड काष्ठ आदि द्वारा ही हो सकती है। और यह प्रचण्ड अग्नि पुत्र आदिकों के रोगों को तथा पशुओं के रोगों को और वीर्य्य के रोगों को दूर करने से उनकी वृद्धि का तथा वृष्टि द्वारा अन्न वृद्धि का कारण है। इसी मन्त्र के शेष भाग में यज्ञ की अग्नि, जो परोपकार का साधन है, उसके निमित्त आहुति देने तथा स्वार्थ परित्याग का विधान है जैसे यह कहते हुए कि यह आहुति अग्नि के लिये है मेरे

लिये नहीं। यदि हवन करने से वर्षा सब के घरों पर पड़ेगी तो उसके घर में भी जो "होता" है वर्षा ज़रूर पड़ेगी अर्थात् सर्वोपकार अथवा परोपकार के अन्दर अपना भला भी हो जाता है किन्तु स्थूलदर्शी मनुष्य औरों के उपकार के अन्तर्गत अपना उपकार न समझने के स्थान में केवल अपना उपकार के लिये ही प्रार्थना करता है जिस से अपना उपकार भी पूर्ण रीति से सिद्ध नहीं करसकता औरों का तो करना ही क्या है। सामाजिक उन्नति का यही एक नियम है कि सब का उपकार चाहे अपने उपकार का ध्यान न करे और ईश्वरीय नियमों से उस का उपकार भी हुए बिना नहीं रहेगा। इस उत्तम उपदेश को मन में दृढ़ करने के लिये इस प्रकार के वाक्य उच्चारण कराने का पुराने समय में अभ्यास डाला जाता था और तभी तो आर्य्य लोग परोपकारी कहलाते थे।

आगे के दो मन्त्रों से दूसरी आहुति देने का विधान है। वादी कह सकता है कि यदि एक मन्त्र से दूसरी आहुति दी जाती तो क्या हानि थी। इस के उत्तर में हम कहेंगे कि कुछ विश्राम लेकर दूसरी आहुति डालने के लिये एक के स्थान में दो मन्त्र पढ़ने का विधान किया गया है ताकि पहिला काष्ठ जो डाला था वह भली प्रकार जल जाय और धूआँ न होने पावे। हम रोज़ देखते हैं कि जिस वक्त चूल्हे में पहिले अग्नि प्रदीप्त करने के लिये बत्ती प्रवेश की जाती है तो ज़रा ठहरना पड़ता है पूर्व इस के कि अधिक ईंधन उन के निकट लाया जावे। उसी भाव को अर्थात् ज़रा थम कर दूसरी समिधा डालने के लिये दो मन्त्र पढ़ने का विधान किया गया है। इन दो मन्त्रों में समिधा के साथ घृत डालने का विधान है क्यों कि घृत अग्नि को प्रचण्ड करने का परम साधन है।

अगले एक मन्त्र से तीसरी समिधा अग्नि में छोड़ने का विधान है और उस मन्त्र में भी अग्नि को भली प्रकार प्रचण्ड करने की ताकीद है।

इन तीन समिधाओं के बाद पाँच आहुति घृत की अथवा मोहन-भोग आदि सामग्री की देने को लिखा है। इन पाँच घृत आहुतियों का उद्देश्य यह है कि अग्नि पूर्णरूप से जल उठे और वेदी में रक्खी हुई समिधाएँ भली प्रकार जलने लगें। इस के पीछे वेदी के चारों तरफ पानी छिड़कने अथवा बनी नालियों में पानी भरने का विधान है। प्रश्न हो

सकता है कि पहिले ही पानी क्यों न छिड़क लिया ? इस का उत्तर यह है कि यदि कुण्ड के अन्दर कोई जन्तु लकड़ियों से निकल कर छिप कर बैठ रहा है तो वह प्रचण्ड अग्नि होने पर कुण्ड से बाहर स्वाभाविक भागने की चेष्टा करेगा । कई बार देखने में भी आया है कि पाँच घृत आहुतियों के समाप्त होने से पहिले कोई न कोई जन्तु गर्मी से घबड़ा कर कुण्ड से बाहर को भाग निकलता है । जब वह भाग निकला अर्थात् जब पाँच आहुतियें पूर्ण हो गई और अग्नि पूर्णरूप से जल उठी तो फिर वह अन्दर छिपा हुआ रह नहीं सकता । इस लिये पाँच घृत आहुतियों के पश्चात् अर्थात् जन्तु को भाग जाने के लिये लग भग पाँच मिनट का अवकाश दिया जाता है और फिर ज्यों ही कि जन्तु भाग जाय अथवा पँच घृत आहुति समाप्त हो जायँ तो उस को अथवा अन्य किसी जन्तु को अग्नि की तरफ आने से बचाने के लिये चारों तरफ से पानी छिड़कने वा पानी की छोटी सी नाली भर देने से उस को रोका जाता है । और चार मन्त्र जिन को पढ़ कर चारों तरफ़ जल छोड़ा जाता है उन पहिले तीनों में ईश्वर को अदिति, अनुमति और सरस्वति आदि नामों से प्रार्थना करते हुए अहिंसाव्रतधर्म करने का विधान है ।

और चौथे मन्त्र में सविता नाम परमात्मा का ले कर प्रार्थना की गई है कि तीन वस्तुएँ हम को यज्ञ की रक्षा के निमित्त सदा प्राप्त होती रहें । (१) यज्ञपति अर्थात् क्षत्रि आदि सुप्रबन्ध कर्त्ता लोग (२) दूसरे पवित्र बुद्धि अर्थात् छल कपट से रहित सत्य ज्ञान (३) वाणी की मधुरता अर्थात् प्रिय भाषण ।

आगे बतलाया है कि "आघारावाज्याहुति" उन आहुतियों को कहते हैं कि जो कुण्ड के उत्तर और दक्षिण भाग में दी जाती हैं ।

कुण्ड के मध्य में जो आहुतियाँ दी जाती हैं उन को "आज्यभागाहुति" कहते हैं ।

यह जो लिखा है कि स्रुवे को अँगूठा ( पहिली अंगुली ) मध्यमा ( तीसरी अंगुली ) अनामिका ( चौथी, अंगुली ) इन से पकड़ कर घृत आहुति दे यह इस लिये कि ऐसी दशा में जो चीज़ पकड़ी जायगी वह दृढ़ता से पकड़ी न रहेगी किन्तु ढीली अवस्था में होगी, ऐसे

पकड़ने को ढीला पकड़ना हम कह सकते हैं और इस लिये स्रुवे को इस प्रकार पकड़ने का विधान किया गया है कि घृत को अग्नि में छोड़ना है और छोड़ने में सरलता हो ।

उत्तर भाग में आहुति अग्नि तत्त्व की वृद्धि के लिये

दक्षिण „ „ „ जल की शुद्धि के लिये देने का विधान है। युरोप के विद्वान् मानते हैं कि उत्तर और पूर्व वेदों (Positive) अर्थात् अग्नि प्रधान दिशाएँ हैं और दक्षिण तथा पश्चिम ऐसी दिशाएँ हैं जो(Negative) अर्थात् अग्नि प्रधान नहीं हैं। उक्त आहुति में जो उत्तर दिशा को दी जाती है वह अग्नि के निमित्त कही गई है और दक्षिण भाग में जो आहुति दी जाती है उस को सोम अर्थात् जल के निमित्त कहा है। यह वर्णन वस्तुओं के स्वाभाविक गुणों का प्रकाशक है।

फिर वेदी के मध्य में जो दो आहुतियाँ दी जाती हैं उन को प्रजापति और इन्द्र अर्थात् गृहस्थी और ऐश्वर्य्य के निमित्त कहा गया है। फिर व्याहृति की चार आहुतियों का वर्णन है। इन चारों में ईश्वर के अनेक नाम लेकर उस की महिमा प्रकाश करने के लिये इन चार आहुतियों का विधान है फिर स्विष्टकृत् नामी एक आहुति एक मन्त्र से देने का विधान है उस मन्त्र का तात्पर्य्य यह है कि हमारी कामनाएँ सिद्ध हों और भौतिक वा शारीरिक प्रायश्चित का उत्तम साधन अग्नि है।

फिर प्राजापत्याहुति को मौन कर के देने का विधान है मौन करने का अभिप्राय यह है कि मन में उस मन्त्र पर विशेष विचार किया जाय। वास्तव में यह समाप्ति की आहुति है इस के आगे जो चार आज्याहुति और अष्ट आज्याहुति लिखी हैं वह विकल्प से कई संस्कारों में दी जाती हैं। पूर्व इसके कि विकल्प की आहुतियाँ जो कि मुख्य अङ्ग नहीं हैं आरम्भ हों प्रजापति की आहुति पर यज्ञ समाप्त समझा जाता है अर्थात् समाप्ति पर मौन हो कर आहुति देने का विधान है जिस का अभिप्राय यह है कि यज्ञ करने वाला यज्ञ का मुख्य उद्देश्य जो प्राजापत्य अर्थात् प्रजा के पालक माता, पिता, गुरु उपदेशक आदि तथा चारों वर्ण हैं उन की उन्नति का साधन यज्ञ है इस प्रकार समझें।

# आज्याहुति के चार मन्त्रों का तात्पर्य्य ।

(१) पहिले मन्त्र में अग्नि को दीर्घायु तथा बल का कारण बताया है और यह सब जानते हैं कि जब तक शरीर में अग्नि तत्त्व प्रधान रहता है तब तक ही यौवन अवस्था बनी रहती है जब अग्नि तत्त्व शरीर में मन्द हो जाता है तब वृद्ध अवस्था आरम्भ हो जाती है । इस मन्त्र में दुष्ट प्राणी अग्नि से दूर भागते हैं, इसका भी उपदेश मिलता है सिंह, सर्प, भालू, मच्छर आदि अग्नि की ज्वाला से निस्संदेह भागते हैं ।

(२) इस मन्त्र में अग्नि को शोधक बतलाया है और इसी बात को लेकर आज युरोप के विद्वान् प्लेग आदि से ग्रसित घरों में अग्नि के जलाने पर जोर दे रहे हैं । यह अग्नि का शुद्धि करने का गुण एक देशीय नहीं किन्तु सर्व देशीय है इस को दर्शाने के लिये मन्त्र में कहा गया है कि ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र और पांचवें अति शूद्र अर्थात् सब मनुष्यों के रोगों का शमन अग्निहोत्र करता है । जो लोग कहते हैं कि वेद में शूद्रों के लिये यज्ञ अथवा संस्कार करने का विधान नहीं वह इस मन्त्र को भली प्रकार पढ़ें ।

(३) यहाँ अग्नि से परमेश्वर के गुणों का वर्णन है कि वह परमात्मा चेतन होने से शुभ कामना करने वाला है और सब का पतितपावन है उसीके नियमों पर चल कर एक नीच से नीच मनुष्य उन्नति को प्राप्त हो सकता है क्योंकि मन्त्रमें मयि शब्दके प्रयोग से पाया जाता है कि एक तुच्छ व्यक्ति उस की उपासना तथा यज्ञ आदि के करने से उन्नत हो सकता है ।

(४) चौथा मन्त्र भी ईश्वर प्रार्थना संबन्धी है और उस का अर्थ तथा व्याख्या पहिले आ चुकी है ।

# अष्ट–आज्याहुतियों के मन्त्रों का तात्पर्य्य ।

(१) पहिले मन्त्र में राजदण्ड का महत्त्व दर्शाते हुए बतलाया गया है कि लोग किसी से द्वेष जो कि सर्व पापों का मूल है न करें ।

(२) दूसरे मन्त्र में प्रभात समय में अग्निहोत्र करने का विधान किया गया है और क्षत्रिय आदि राजपुरुषों को यज्ञ आदि की रक्षा के

लिये यज्ञ स्थल पर बुलाकर बिठाने का विधान है ताकि क्षत्रिय आदि शासकजनों के विद्यमान होने से कोई दुष्टजन किसी प्रकार का उपद्रव न कर सके ।

( ३ ) तीसरे मन्त्र में राजा आदि शासक पुरुषों से प्रत्यक्ष होकर बात चीत करने का विधान है । ताकि वह भली प्रकार यजमानों की इच्छानुसार सुप्रबन्ध कर सकें ।

( ४ ) चौथे मन्त्र में बतलाया है कि ईश्वर उपासना और अग्निहोत्र कर्म्म से आयु की वृद्धि होती है यह बात दर्शाई गई है ।

( ५ ) पाँचवें मन्त्र में बतलाया गया है कि यज्ञ आदि शुभ कर्म्मों के करने में अनेक प्रकार के विघ्न मनुष्यों को प्राप्त होते हैं और वर्तमान काल में उन विघ्नों का शमन सदाचारी विद्वान् ही कर सकते हैं । इस लिये कई प्रकार के विघ्नों को दूर करने के लिये सदाचारी विद्वानों का आश्रय लेना चाहिये ।

( ६ ) छटे मन्त्र में यज्ञ की अग्नि प्रायश्चित योग्यपुरुषों के दोषों का निवारक कहा गया है ।

( ७ ) सातवें मन्त्र में तीन अर्थात् अधम, मध्यम और उत्तम प्रकार के विघ्नों को बतलाते हुए उनके नाश करने का उपाय, ईश्वर की आज्ञा का पालन बतलाया गया है । वास्तव में पाप, दुख और विघ्न क्या है ? सृष्टि नियम अथवा ईश्वरीय आज्ञा के अनुकूल न चलना । पाप पहिले बीजरूप से मन में उत्पन्न होता है फिर वाणीद्वारा शाखारूप में आता है और कायिक कर्मद्वारा फलरूपी अवस्था को प्राप्त होता है । मानसिक पाप अधम अवस्था में, वाणी के पाप मध्यम अवस्था में, और कायिक पाप उत्तम अवस्था में समझने चाहियें ।

( ८ ) आठवें मन्त्र में मनुष्य की उन्नति का रहस्य बतलाया गया है कि जो लोग परस्पर छल नहीं करते, एक दूसरे की सहायता करते और एक उद्देश्य को लक्ष में रखने वाले होते हैं वही यज्ञादि श्रेष्ठ कर्म्मों को कर सकते हैं दूसरे नहीं कर सकते ।

## वामदेव्य गान ।

( १ ) पहिले मन्त्र में दो प्रश्न हैं पहिला यह कि परमात्मा की अनुकूलता और स्वरक्षा किस प्रकार मनुष्य को प्राप्त हो सकती है ? उस

के उत्तर में कहा गया है कि श्रेष्ट बुद्धियुक्त बर्ताव से; अर्थात् बुद्धि, बल और स्वाश्रयावलम्बन महत्व दर्शाया गया है ।

( २ ) दूसरे मन्त्र में दिखलाया गया है कि शारीरिक बल का मुख्य साधन अन्न है ।

( ३ ) तीसरे मन्त्र में परमात्मा को ही 'Savioier' अर्थात् एकमात्र रक्षक और तारक कहा गया है । किसी मनुष्य को रक्षक और तारक न मानने का इसमें उपदेश है । एक ईश्वर को रक्षक तथा तारक मानना यह सच्चा विश्वास आत्मिक बल का परम साधन है ।

इन तीन मन्त्रों में जो सामगायन संबन्धी हैं अक्षर गणित (Algebra) के मूल सिद्धान्तों का बोधन कराया गया है क्योंकि अक्षरों के ऊपर १, २, ३ और रा आदि चिन्ह किये गये है जैसे कि अक्षर गणित वा बीजगणित में देखते हैं ।

## हवनयज्ञ सम्बन्धी प्रश्नोत्तर ।

रथ बनाना, गृह बनाना, सड़कें बनाना, विमान रचना आदि सब यज्ञ हैं, जैसा कि वेदमन्त्रों से स्पष्ट होता है पर वह कर्म जिस के द्वारा शारीरिक तथा मानसिक उन्नति सब प्रजा की मुख्य करके हो उस को हवनयज्ञ कहा गया है और उसका महत्व सब से अधिक है । इसका यह अर्थ नहीं है कि हवनयज्ञ करने पर रेल, तार, विमान, घर, सड़क आदि बनाने की ज़रूरत नहीं रहती किन्तु जैसे शरीर में नेत्र होने से कान, नाक हस्त, पग आदि सब की ज़रूरत रहती है पर नेत्रों को प्रधान इन्द्रिय कहने में आता है । इसी प्रकार "हवनयज्ञ" अनेक यज्ञों में प्रधान यज्ञ है । यह वायु शुद्धि और मानसिक प्रसन्नता का प्रबल साधन है ।

अंग्रेज़ी भाषा में जो हाईजिन शब्द है जिसके अर्थ स्वास्थ्यरक्षा के हैं, निःसन्देह वह हवन यजन का अपभ्रंश है । परन्तु प्रयोजन हाईजिन और हवनयज्ञ का मुख्य करके एक ही है अर्थात् स्वास्थ्यरक्षा ॥

## हवन सम्बन्धी आशङ्काएँ और उन का उत्तर—

( प्रश्न ) हवन करने वाले कहते हैंकि हवन वायु को शुद्ध करता और सुगन्ध फैलाता है हमारे विचार में यह बड़ी खेंच तान है । सुगन्ध सूंघने में रोचक है और अन्य सर्व मादक द्रव्यों की नाईं उस क्षण में बल देती है

और पीछे निर्बलता उत्पन्न करती है। और सुगन्ध हवन से बहुत न्यून उत्पन्न होती है सबसे अधिक "कार्बनडायी अक्साईड" पैदा होती है जो हानिकारक है। एक समय था जब कि भारतवर्ष में जँगल अधिक और मनुष्य सँख्या बहुत न्यून थी उन दिनों घी और अन्य "हाईड्रोकार्बन" पदार्थों का जलाना वनस्पति की वृद्धि में कुछ थोड़ा सा साहाय्यकारी हो सकता था इस लिये कि इस से "कार्बनडाई अक्साईड" जो वनस्पति का वायु रूप भोजन है उत्पन्न होता था परन्तु आज कल दशा सर्वथा परिवर्त्तित हो गई है सच पूछो तो हमारे यहाँ जँगल नहीं रहे और देश में आबादी घनी हो गई जिस कारण वायु में अत्यन्त "कार्बनडाई अक्साईड" उपस्थित रहता है जो कि लोगों को सुस्त बना देता है। इन दिनों भारत वासियों को अधिक आक्सीजन और "ओज़ून" की आवश्यकता है न कि "कार्बनडाई अक्साईड" की।

( उत्तर ) वादी का जो यह कथन है कि सुगन्ध सूंघने में रोचक है और अन्य मादक द्रव्यों की नाईं उस क्षण में बल देती और पीछे निर्बलता उत्पन्न कर देती है इन शब्दों के अन्दर एक भ्रान्ति काम कर रही है। प्रतीत होता है कि प्रश्नकर्त्ता हवन अथवा जँगल की सुगन्धित वायु और अतर की सुगन्ध को एक ही अर्थों में ले रहे हैं। वास्तव में सब जानते हैं कि जँगल अथवा उद्यान की सुगन्धित वायु के सूंघने से मस्तिष्क को बल और मन को आनन्द मिलता है और पीछे भी कोई निर्बलता उत्पन्न नहीं होती। जो मनुष्य प्रतिदिन प्रातःकाल वायु सेवन करने का स्वभाव रखते हैं वे इसके साक्षी हो सकते हैं। यह सच है कि फूल अथवा अतर को नाक के निकट लगा और नित्य सूंघने से नज़ला या जुकाम पैदा हो जाता है और उसका कारण यह है कि मर्यादा से रहित बहुत सुगन्ध अन्दर चली जाती है और इस लिये कि बिना वायु संसर्ग के केवल फूल ही सूंघा जाता है। इसी लिये बुद्धिमान् और अनुभवी पुरुषों ने गुलदस्ते सूंघने की बजाय फूलों के कुण्ड कुछ दूरी पर रक्खे रहें और उस दूर से आने वाली हवा का श्वास लिया जाय जिस में उनकी सुगन्धि बस गई है। ऐसी हवा का सूंघना पीछे नज़ला या जुकाम नहीं करता। कई अंग्रेज़ अपनी कोठियों के इर्द गिर्द फूल दूर २ रखते हैं ताकि उनकी सुगन्धि अकेली मस्तिष्क में आने के स्थान में हवा से होकर आवे और

हवा में गुज़रते समय हवा साथ मिल जाय ताकि वह तीव्रसुगन्ध ख़राबी पैदा न करे। अतर ओषधि के तौर पर उपयोग में लाना दूर से अधिक लाभकारी हो सकता है। अतर और फूल को निकट से सूंघने से दोष उत्पन्न हो सकता है। यूक्लिपटस् आईल को अकेला सूंघने के स्थान में एक दो बिन्दु रुमाल पर छिड़क कर रुमाल को कोट की पाकेट में दूर रक्खा जाता है ताकि थोड़ी २ सुगन्धि हवा के साथ मिल कर आती रहे और इससे डाक्टर लोग नज़ले और जुकाम को दूर करते हैं।

जिस प्रकार हर एक वस्तु का योग्य व्यवहार सदैव लाभदायक हुआ करता है उसी प्रकार किसी सुगन्धि अथवा फूल या अतर के विषय में जानना चाहिये। अनुभव द्वारा प्रत्येक मनुष्य इस बात का निर्णय कर सकता है कि विधिपूर्वक अर्थात् घृत तथा सुगन्धित द्रव्योंद्वारा हवन से उत्पन्न होने वाली सुगन्धि कभी भी आरम्भ में सुख और पीछे दुःख नहीं देती। कौन कहता है कि मकान के दर्वाजे बन्द करके हवन करो जिस से तुम को केवल ऐसी सुगन्धि के सूँघने का अवसर मिले जिस में वायु मिलाहुआ नहीं। विधिपूर्वक हवन या तो खुली जगह में या दर्वाजे खोल कर किया जाता है और उस दशा में हवन से उत्पन्न होने वाली सुगन्धि के साथ वायु पर्य्याप्त मिल जाती है। कभी भी किसी मनुष्य के लिये वह सुगन्धित वायु जो हवन द्वारा उत्पन्न होता है आरम्भ में बल और अन्त में निर्बलता का कारण नहीं हुआ और घृत सुगन्धि की तीव्रता और उस तीव्रता के कारण उत्पन्न होने वाले रोगों को निःसंदेह शमन करता है।

यह जो शङ्का की जाती है कि हवन करने से सुगन्धि बहुत थोड़ी उत्पन्न होती और सब से अधिक "कार्बनडाई अक्साईड" पैदा होता है इस के उत्तर में पहिले यह सोचना चाहिये कि प्रश्नकर्त्ता सुगन्धि की उत्पत्ति को तो स्वीकार करता है हम आगे चल के दिखायेंगे कि सुगन्धि भी कम नहीं किन्तु अधिक उत्पन्न होती है और प्रश्नकर्त्ता इस बात को सिद्ध करने के लिये कि "कार्बनडाई अक्साईड" अधिक उत्पन्न होता है किसी सायंस की पुस्तक का प्रमाण तो देते ही नहीं। क्या कोई भी किसी पदार्थ विज्ञान अथवा रसायन शास्त्र की पुस्तक का प्रमाण दे कर कह सकता है कि चन्दन, घी, खाँड, गिलोय, कपूर, केसर, अगर, तगर,

मुश्कवाला, जटामांसी, धूप, और यवादि को प्रदीप्त अग्नि में जलाने से कार्बनडाई अकसाईड की अधिक उत्पत्ति होती है ! और सुगन्धि उस की अपेक्षा में बहुत कम ! नासिका इन्द्रिय रखने वाला प्रत्येक मनुष्य हवन के स्थान में सुगन्धि प्रतीत करता है न कि दुर्गन्धि ।

हाँ यह ठीक है कि जलने की क्रिया से " कार्बनडाई अक्साईड " भी उत्पन्न हुआ करता है किन्तु इस का परिमाण भिन्न २ वस्तुओं के जलने से भिन्न प्रकार का होता है न कि एक जैसा । तम्बाकू, लाल मिर्च, गन्धक, कोयला, घी, और चन्दन, प्रत्येक वस्तु जल सकती है परन्तु प्रत्येक के जलने से समान परिमाण में " कार्बनडाई अक्साईड " का उत्पन्न होना कोई विद्वान् नहीं मान सकता ! यतः–हवन में सुगन्धित द्रव्य और डिसइनफेक्टेंट (रोगनाशक) वस्तुयें जलती हैं इसलिये आक्सीजन और ओज़ून ( शुद्ध तथा सुगन्धि वायु ) " कार्बनडाई अक्साईड " की अपेक्षा बहुत होता है । जो थोड़े से परिमाण में "कार्बनडाई अक्साईड " उत्पन्न होता है उस के प्रभाव को सुगन्धित तथा रोग नाशक पदार्थ नष्ट भ्रष्ट कर देते हैं । बाग़ अथवा फुलवाड़ी के अन्दर जब हम सैर करते हैं तो वहाँ भी हवन भूमि की तरह आक्सीजन और ओज़ून बहुत होता है परन्तु उस का यह अर्थ नहीं कि " कार्बनडाई अक्साईड " का अत्यन्त अभाव होता है ।

सृष्टि में यह अद्भुत नियम है कि 'कार्बनडाई अक्साईड' (दुर्गन्धित वायु) यदि साधारण अथवा स्वच्छ वायु के साथ भी मिला हुआ हो तो भी बीमारी अथवा दोष का कारण नहीं होता किन्तु जब दुर्गन्धि अथवा सल्फाइड के साथ मिला हुआ हो तो उस समय दोष उत्पन्न करता है । हमारे कथन की पुष्टि " हाईजीन " नामक पुस्तक से जो महाशय जे० लैन० नाटर एम० ए० एम० डी० आर० एच० फर्थ० एफ० आर० सी० एस० जो लंडन के लाँगमैन ग्रीन एंड० को० ने प्रकाशित की है उस के पृष्ठ १२ पर लिखा है कि:—

" यद्यपि बहुत काल ऐसी कोठरियों में ठहरे रहना जिन में बहुत से आदमी हों अथवा खिड़कियाँ पर्याप्त न हों और जिनका वायु विशेष करके दोषयुक्त हो उसमें " कार्बोनिकएसिड " अधिक परिमाण में होता

है । और जिन स्थानों में शिर पीड़ा, मूर्च्छा, शिर चकराना आदि रोग उत्पन्न हो जाते हैं उनका कारण गरमी अथवा "कार्बनडाई अक्साईड" की उपस्थित ही नहीं है । यह दोष वास्तव में वायु के अन्दर आक्सीजन के न्यून हो जाने से और कुछ वायु में मानुषी अथवा पशु प्राणियों के मलिन परमाणुओं के कारण जो फेफड़े वा त्वचा द्वारा निकलते हैं, पैदा होते हैं" ।

फिर इस बात को दिखाने के लिये कि मनुष्य अथवा पशुओं के मलिन परमाणुओं का परिणाम कहाँ तक हानि कारक होता है, डा० लैन नाटर उसी पृष्ठ पर लिखते हैं कि—

"उस वायु का दम लेने से जिसमें मलिन अणु मिल रहे हों भारीपन, आलस्य, शिरःपीडा, आदि रोग उत्पन्न होते हैं । पशुओं पर जो प्रयोग ( तजुरबा ) किये गये उन में वाष्प और कर्बोनिकडाई अक्साईड को वायु से पृथक् कर लिया गया केवल मलिन अणुओं को हवा में मिला हुआ रहने दिया तो प्रतीत हुआ कि यह मलिन अणुओं ( मलिनता ) से युक्त वायु बड़ा विषमय है यहाँ तक कि एक चूहा ४५ मिनट में मर गया" ।

इत्यादि प्रमाणों से हम यह कह सकते हैं कि "कार्बनडाई अक्साईड" से भी बढ़कर हानिकारक मलिनता के अणु हुआ करते हैं और इन मलिन अणुओं को हलका करके दूर २ तक भगा देने में हवन करने अथवा अग्नि के जलाने के सिवाय और कोई उत्तम साधन है ही नहीं हवन के यह लाभ हैं:—

( १ ) हवन करने से सुगन्धि फैलती है जिसकी साक्षी प्रत्येक नासिका रखने वाला नीरोग मनुष्य दे सकता है और इस सुगन्धि के कारण वायु में आक्सीजन अथवा ओज़ून भर जाता है । ( २ ) कार्बनडाई अक्साईड हवन करने से नाममात्र उत्पन्न होता है इस का प्रत्यक्ष-प्रमाण यह है कि हवन स्थान में कोई मनुष्य दुर्गन्धि प्रतीत नहीं करता और जो यह सुगन्धि के साथ मिला हुआ थोड़ा सा कार्बोनिकडाई अक्साईड ( दुर्गन्धित वायु ) होता है वह स्वयं किसी प्रकार के रोग का कारण नहीं होता जैसा कि हम ऊपर डा० नाटर के लेख से दिखा चुके हैं । ( ३ ) वे मलिन-अणु जो अत्यन्त विषमय होते हैं और जिन के कारण चूहे तक

भर जाते हैं उन को हलका और सूक्ष्म बना कर घरों से बाहर अन्तरिक्ष में पहुंचाने का साधन हवन की अग्नि है । प्रश्नकर्त्ता ने जो यह कहा था कि कार्बनडाई अक्साईड ही मनुष्यों को आलसी बना देता है सो यह बात सर्वांश में सत्य नहीं जैसा कि हाईजिन के प्रसिद्ध कर्त्ता के लेखानुसार मनुष्यों अथवा पशुओं के मलिन अणु आलस आदि अनेक रोगों के कारण होते हैं । यतः प्रश्नकर्त्ता कहते हैं कि आज कल लोगों को आक्सीजन और ओज़ून की ज़रूरत है अतः हम हाईजिन के प्रमाणों से दिखाना चाहते हैं कि आक्सीजन और ओज़ून क्या ? वहाँ मिलता है जहाँ सुगन्धि होती है अथवा और कहीं पर ?

" कार्बोनिक एसिड " को कभी २ कार्बनडाई अक्साईड कहते हैं इस के स्वाद और गन्ध में किञ्चित अम्लांश होती है और आक्सीजन के विरुद्ध इस का काम जीवन की क्रिया और अग्नि के अलाने को सहायता न देने का है " ।

" यह गैस ( सूक्ष्म धूम ) बहुत भारी होता है पानी में यह घुल जाती है स्थान और ऋतु के अनुसार यह सदैव वायु में उपस्थित रहती है । लंडन की गलियों में प्रतिसहस्त्र भाग पीछे में ३६ अंश के परिमाण में पाई जाती है और ग्रामीण स्थानों अथवा पहाड़ों की चोटियों पर प्रतिसहस्त्र ·३ अंश के परिमाण में उपस्थित रहती है " ।

यदि स्वच्छ वायु के १००० भाग हों तो उसमें ·४ भाग कार्बोनिक एसिड के सदैव पाये जायेंगे जब तक कार्बोनिक एसिड इस अवधि से बढ़ न जाय तब तक यह वायु को विषमय नहीं करता ( देखो पृष्ठ ४० नाठर कृत हाईजिन ) इस से यह बात प्रगट है कि हवन की सुगन्धि के साथ जो बहुत अल्प परिमाण में कार्बनडाई अक्साईड उत्पन्न होता है उसका होना ज़रूरी है और सदैव निर्मल वायु में भी प्रति सहस्त्र ·४ अंशके परिमाण में पाया ही जाता है ।

" आक्सीजन की एक बदली हुई दशा जो कि वायुमंडल में थोड़ी २ पाई जाती है उस का नाम (Oczone) 'ओज़ून' है । यह बड़ी उपयोगी गैस है और एक प्रकार की तीव्र आक्सीजन है निर्मल वायु में यह बहुत अधिक पाई जाती है और उन स्थलों में जहाँ पर मनुष्य अथवा पशुओं

की मलिनता के अणु बहुत वहाँ यह अत्यन्त न्यून पाई जाती है और जहाँ पर मनुष्य अथवा पशु बहुत बसे हुए हैं वहाँ भी होती है । जब कभी वायु में बिजली का प्रसार हो तब ओज़ून पैदा हो जाता है फिर यही ओज़ून साधारण आक्सीजन के रूप में अग्नि की क्रिया से बदल जाता है । ओज़ून की पहिचान उसका गन्ध है जो कि बहुत तीक्ष्ण होती है यहाँ तक कि यदि वायु के पच्चीसलाख भाग हों और उस में ओज़ून का भाग एक हो तो फिर भी उस की उपस्थिति प्रकट हो सकती है । जङ्गल का खुला वायु और समुद्र के वायु में उसकी तीव्रता विशेष कर के प्रतीत होती है " ( देखो हाईजिन नाठर कृत पृष्ठ ३० ) ।

इस से प्रकट होता है कि जिस को पश्चिमीय डाक्टरों की परिभाषा में ओज़ून कहा गया है उस को संस्कृत भाषा में सुगन्धित वायु अथवा शुद्ध प्राणवायु कहते हैं ।

इस लिये कि ओज़ून निर्मल वायु में मिली रहती है यथा जङ्गल और समुद्र के तट पर उस को उष्णता दी जाय तो यह ओज़ून आक्सीजन का रूप बन जाती है परन्तु उस की सुगन्धि यहाँ तक तीव्र होती है कि—२५०००००० (पच्चीस लाख) भागों में एक भाग होने पर भी अपना प्रभाव प्रकट किये बिना नहीं रहे गी ।

इसी कारण थोड़े भी सुगन्धित द्रव्यों का हवन किया हुआ सुगन्धि को सर्वत्र मकान में अथवा गली कूचों में फैला देता है और जिस प्रकार जङ्गल अथवा बाग़ की हवा से मस्तिष्क आनन्द प्राप्त करता है उसी प्रकार उस स्थल की वायु से जहाँ हवन हो रहा अथवा हो चुका है मस्तिष्क आनन्द अनुभव करने लग जाता है अतएव हवन करने से निस्सन्देह ओज़ून और आक्सीजन की वृद्धि होती है ।

अब हम यह दिखाना चाहते हैं कि (Carbonic Acid or Carbondi Oxide,) "कारबोनिक एसिड वा कारबनडाइ ओक्साईड" कहाँ २ पाया जाता है और उस की पहचान किस प्रकार हो सकती है ? सोडावाटर के कारखानों में जहाँ "कारबोनिक एसिड" बहुत तय्यार होता है वहाँ की वायु में प्रति सहस्र भाग में ६; १० भागों तक मिलता है । जब "कार-बोनिक एसिड" सहस्र भागों में ७५ भाग पाया जावे तो उस समय यह

विषरूप हो जाता है और जब सहस्त्र भाग पीछे १५ भाग इस के वायु में हों तो शिरःपीड़ा, मूर्छा, शिर चकराना और श्वास उखड़ने की बीमारियाँ पैदा हो जाती हैं। जब प्रति सहस्त्र १० भागों तक पाया जावे तब तो स्वास्थ्य पर कोई विशेष दुष्प्रभाव नहीं दिखाता। जब बहुत परिमाण में हो तब मूर्छा रोग उत्पन्न कर देता है। हम सब उस दुर्गन्धित वायु को जानते हैं जो कि बिना खिड़कियों के कमरों वा उन कोठरियों से आती है जिन में बहुत से मनुष्य तङ्ग बैठे हुए रहते हैं। जब यह "कारबोनिक एसिड" सहस्त्र भाग पीछे छः दशमलव के परिमाण में हो तो इस के होने का पता तक नहीं प्रतीत होता क्यों कि इतना परिमाण वायु के साथ मिल कर प्रतीत होने वाली दुर्गन्धि नहीं बनती और इतने परिमाण का हवा में होना आवश्यकीय है और यह परिमाण हानि कारक नहीं। जब कि "कार्बोनिक एसिड" इस परिमाण से बढ़ जाता है तब साथ के मलिन अणु जो हवा में होते हैं प्रतीत होने लगते हैं।" (देखो हाईजीन पृष्ठ १३)।

जो लोग कहा करते हैं कि हवन करने से "कार्बनडाई अक्साईड" बहुत पैदा होता है वह कभी भी किसी सायँसदाँ का प्रमाण अथवा युक्ति नहीं दे सकते। उपरोक्त लेख से यह प्रकट ही है कि जब 'कार्बोनिक एसिड' अथवा 'कार्बनडाई अक्साईड' मर्यादा से अधिक बढ़ जाता है तब मलिन अणु नासिकाद्वारा दुर्गन्धिके रूपमें प्रतीत होने लगते हैं और प्रति सहस्त्र अणु भाग (छः दशमलव) के परिमाण में उस का रहना कुछ भी हानि नहीं करता। यतः हवन करते समय अथवा उस के पश्चात् कोई भी मनुष्य कभी दुर्गन्धि प्रतीत नहीं करता इस लिये हम पूर्वोक्त पश्चिमीय प्रमाण द्वारा कह सकते हैं कि हवन करने से 'कार्बनडाई अक्साईड' कभी भी अधिक उत्पन्न नहीं होता जिस से कि हानि के भय की सम्भावना हो प्रत्युत बड़ी भारी सुगन्धि फैलती है जो कि सर्वथा रोग निवारक है।

युरोपादि में जितने प्रकार आजकल वायु शुद्धि के प्रचलित हैं उन में प्रायः "फायर स्टोव्ज़" (अंगीठियों) का उपयोग किया जाता है यतः दूषित वायु उष्ण हो कर फैले और हलकी बन कर गृह की खिड़की अथवा भिन्न मार्गों से दूर निकल जावे और उस की जगह तात्कालिक ठंडी वायु

नीचे के द्वारों से आ सके यही नियम हवन के करने में पाया जाता है भेद इतना है कि स्टोव्ज़ (अंगीठी) की दशा में आकाश में सुगन्धि नहीं फैल सकती जब कि हवन की दशा में घर और वायुमण्डल सुगन्धि से महक उठता है।

(प्रश्न) गन्धक जलाने तथा फेनाइल छिड़कने से रोग के त्रसरेणु तथा अणु नष्ट होते हैं इस लिये हवन के साथ इन का भी उपयोग किया जाय तो अधिक लाभ रहेगा।

(उत्तर) गन्धक के जलाने अथवा फेनाइल के छिड़कने की आवश्यकता नहीं, हवन का करना ही पर्याप्त है। गन्धक जलाने से कई प्रकार के रोगोत्पादक अणु दूर हो सकते हैं किन्तु गन्धक की जो विलक्षण दुर्गन्धि है वह मस्तिष्क के लिये बहुत हानिकारक है और गन्धक का धूम लेने से खाँसी तथा छींकें आती हैं यह प्रत्येक मनुष्य प्रत्यक्ष अनुभव करता है। जब कि वह दीवासलाई की सींक का धूआं असावधानी से ले बैठता है। फेनाइल में अति दुर्गन्ध होती है और जहाँ पर यह छिड़का जाय वहाँ पर आने वाले मनुष्य को अवश्य शिर पीड़ा प्रतीत होने लगती है इस लिये इस के उपयोग की आवश्यकता नहीं। हवन की सामग्री गन्धक और फेनाइल से बढ़ कर गुणदायक होने पर किसी प्रकार के रोग को जो कि गन्धक या फेनाइल, खाँसी और शिर पीड़ा के रूप में करते हैं नहीं करती। जो लोग गरम कपड़ों में अथवा जेब में फेनाइल की गोलियाँ रखते हैं वह कभी भी उस की भयङ्कर दुर्गन्धि से बच नहीं सकते जेब में कपूर की टिकिया रखना सर्वोत्तम है। वस्त्रों में जटामांसी रखने से उस से बढ़ कर प्रयोजन सिद्ध हो सकता है।

**हवन विषयक पश्चिमीय विद्वानों का साक्ष्य**

हवन का करना एक ऐसी सायँस की बात है कि इस के विरुद्ध आज कल कोई भी विद्वान् नहीं हो सकता। "दी इण्डियन रिव्यू" (The Indian Review) अप्रैल सन् १९१२ के अंक ३६५ पर जो 'होम की सफलता' विषयक अंग्रेज़ी में लेख प्रकाशित हुआ है उसका हिन्दी अनुवाद नीचे दिया जाता है जिससे निष्पक्ष पाठक स्वयं जान लेंगे कि पश्चिमीय विद्वानों का मत हवन के सिद्धान्तों को पुष्ट करता है।

# पदार्थ-विज्ञान से होम की सफलता ।

"एक विद्वत्तापूर्ण 'अनिश्चितज्ञान और पदार्थ-विज्ञान' सम्बन्धी लेख जो ६ सितम्बर के पायोनियर में मुख्य भाग में निकला है उस में निम्नलिखित वचन हैं:—

यह सिद्धान्त कि सर्वजनीन स्थानों में अग्नि जलाने से जनविध्वंस कारक रोगशमन होते हैं ऐसा सिद्धान्त था कि जिस की नींव साधारण अनिश्चित अवलोकन पर थी । इस का सम्बन्ध मानवीय उन्नति सम्बन्धी एक बड़े प्रसिद्ध आविष्कार से था कि धूनी देने से प्राणियों के शारीरिक पदार्थ, विकार पाने से रुकते हैं । यह सर्वथा अकस्मात् आविष्कार हुआ और केवल हमारे समय में तथा पश्चिम में धैर्यशील प्रयोग से यह बात निश्चित हुई कि धूम का प्रभाव रोगनाशक है अथवा यों कहो कि लकड़ी के धूम में कुछ वस्तु है कि जो विकारोत्पादक जन्तुओंके लिये हानिकारक है । मि० ट्रिलिट् ने मालूम किया है कि अमुक परिमाण में खांड के शीघ्र जलने से 'फार्मिक एलडि हाईड' नामी बाष्प उत्पन्न होती है जो रोग के सूक्ष्म जन्तुओं के नाश के लिये प्रबल ओषधि है । यह रोगनाशक वस्तु जलाये जाने योग्य लकड़ी के धूम में होती है । १ सेर चीड़ की लकड़ी के धूम में फी सैकड़ा ३२ अंश, शाहबलूत की लकड़ी में फी सैकड़ा ३५ अंश, शुद्ध खांड में फी सैकड़ा ७७ अंश और साधारण धूप में फी सैकड़ा १८ अंश "एलडिहाइड" के होते हैं । महामारी के समय जो अग्नि प्रज्वलित की जाती है उसका प्रत्यक्ष प्रभाव शारीरिक तथा रासायनिक होता है । उस आध्यात्मिक प्रभाव के अतिरिक्त जो लोगों को निराशा, भय और आलस्य से बचने के लिये कुछ करना सिखाता है । अतः प्राचीन भारत वासियों का होमकरना निष्फल न था ।"

इति ।

# अथ गर्भाधानविधिः ॥

मनुष्यों के शरीर और आत्मा के उत्तम होने के लिये निषेक अर्थात् गर्भाधान से लेके श्मशानान्त अर्थात् मृत्यु के पश्चात् मृतक शरीर का बिधि पूर्वक अन्त्येष्टि*संस्कार करने पर्यन्त १६ संस्कार होते हैं। शरीर का आरम्भ गर्भाधान और शरीर का अन्त भस्म कर देने तक सोलह प्रकार के उत्तम संस्कार करने होते हैं उनमें से प्रथम गर्भाधान संस्कार है।

"गर्भस्याऽऽधानं वीर्यस्थापनं स्थिरीकरणं यस्मिन्येन वा कर्मणा तद् गर्भाधानम्," गर्भ का धारण, अर्थात् वीर्य का स्थापन-गर्भाशय में स्थिर करना जिसमें वा जिससे होता है उसे गर्भाधान कहते हैं। जैसे बीज और क्षेत्र के उत्तम होने से अन्नादि पदार्थ भी उत्तम होते हैं वैसे उत्तम संस्कृत बलवान् स्त्री पुरुषों से सन्तान भी उत्तम होते हैं। इससे पूर्ण युवावस्थापर्यन्त यथावत् ब्रह्मचर्य का पालन और विद्याभ्यास करके अर्थात् न्यून से न्यून १६ सोलह वर्ष की कन्या और २५ पच्चीस वर्ष का पुरुष, ब्रह्मचर्ययुक्त अवश्य हो और इससे अधिकवय वाले होने से अधिक उत्तमता होती है। क्योंकि विना सोलहवें वर्ष के गर्भाशय में बालक के शरीर को यथावत् बढ़ने के लिये अवकाश और गर्भ के धारण पोषण का सामर्थ्य कभी नहीं होता, और २५ पच्चीस वर्ष के विना पुरुष का वीर्य भी उत्तम नहीं होता, इसमें यह प्रमाण है:—

पञ्चविंशे ततो वर्षे पुमान्नारी तु षोडशे ॥
समत्वागतवीर्यौ तौ जानीयात् कुशलो भिषक् ॥ १ ॥
सुश्रुते, सूत्रस्थाने, अध्याय ३५ ॥
ऊनषोडशवर्षायामप्राप्तः पञ्चविंशतिम् ॥
यद्याधत्ते पुमान् गर्भं कुक्षिस्थः स विपद्यते ॥ २ ॥
जातो वा न चिरं जीवेज्जीवेद्वा दुर्बलेन्द्रियः ॥
तस्मादत्यन्तबालायां गर्भाधानं न कारयेत् ॥ ३ ॥
सुश्रुते, शारीरस्थाने, अ० १० ॥

---

* अन्त्येष्टि संस्कार, केवल स्थूल शरीर का होता है, अन्य सब स्थूल शरीर और लिङ्ग शरीर दोनों के होते हैं अतः १६ संस्कार कथन का व्याघात नहीं ॥

देखिये सुश्रुतकार परम वैद्य कि जिनका प्रमाण सब विद्वान् लोग मानते हैं, वे गर्भाधान का समय, न्यून से न्यून १६ वर्ष की कन्या और २५ पच्चीस वर्ष का पुरुष अवश्य होवे, यह लिखते हैं। जितना सामर्थ्य पच्चीसवें २५ वर्ष में पुरुष के शरीर में होता है उतना ही सामर्थ्य १६ सोलहवें वर्ष में कन्या के शरीर में हो जाता है इसलिये वैद्य लोग पूर्वोक्त अवस्था में दोनों को समवीर्य अर्थात् तुल्य सामर्थ्य वाले जानें ॥१॥ सोलह वर्ष से न्यून अवस्था की स्त्री में पच्चीस २५ वर्ष से कम अवस्था का पुरुष यदि गर्भाधान करता है तो वह गर्भ उदर में ही बिगड़ जाता है ॥२॥ और जो उत्पन्न भी हो तो अधिक नहीं जीवे अथवा कदाचित् जीवे भी तो उस के अत्यन्त दुर्बल शरीर और इन्द्रिय हों, इस लिये अत्यन्त बाला अर्थात् सोलह वर्ष की अवस्था से कम अवस्था की स्त्री में कभी गर्भाधान नहीं करना चाहिये ॥३॥

इससे यह सिद्ध होता है कि यदि शीघ्र विवाह करना चाहें तो कन्या १६ सोलह वर्ष की और पुरुष २५ पच्चीस वर्ष का अवश्य होना चाहिये। मध्यम समय कन्या का २० बीस वर्ष पर्यन्त और पुरुष का ४० चालीस वर्ष और उत्तम समय कन्या का २४ चौबीस वर्ष और पुरुष का अड़तालीस वर्ष पर्यन्त का है जो अपने कुल की उत्तमता उत्तम सन्तान दीर्घायु सुशील बुद्धि बल पराक्रम युक्त विद्वान् और श्रीमान् करना चाहें वे १६ सोलहवें वर्ष से पूर्व कन्या और पच्चीसवें वर्ष से पूर्व पुत्र का विवाह कभी न करें यही सब सुधार का सुधार सब सौभाग्यों का सौभाग्य और सब उन्नतियों की उन्नति करने वाला कर्म है कि इस अवस्था में ब्रह्मचर्य रख के अपने सन्तानों को विद्या और सुशिक्षा ग्रहण करावें कि जिससे उत्तम सन्तान होवे ॥

## ऋतुदान का कालः—

ऋतुकालाभिगामी स्यात्स्वदारनिरतस्सदा ।
पर्ववर्जं व्रजेच्चैनां तद्व्रतो रतिकाम्यया ॥ १ ॥
ऋतुः स्वाभाविकः स्त्रीणां रात्रयः षोडश स्मृताः ।
चतुर्भिरितरैः सार्द्धमहोभिः सद्विगर्हितैः ॥ २ ॥
तासामाद्याश्चतस्रस्तु निन्दितैकादशी च या ।
त्रयोदशी च शेषास्तु प्रशस्ता दश रात्रयः ॥ ३ ॥
युग्मासु पुत्रा जायन्ते स्त्रियोऽयुग्मासु रात्रिषु ।
तस्माद्युग्मासु पुत्रार्थी संविशेदार्त्तवे स्त्रियम् ॥ ४ ॥
पुमान् पुंसोऽधिके शुक्रे स्त्री भवत्यधिके स्त्रियाः ।
समे पुमान् पुंस्त्रियौ वा क्षीणेऽल्पे च विपर्य्ययः ॥ ५ ॥
निन्द्यास्वष्टासु चान्यासु स्त्रियो रात्रिषु वर्जयन् ।
ब्रह्मचार्य्येव भवति यत्र तत्राश्रमे वसन् ॥ ६ ॥
मनुस्मृतौ अ० ३ । श्लो० ४५–५० ॥

अर्थः—मनु आदि महर्षियों ने ऋतुदान के समय का निश्चय इस प्रकार से किया है कि सदा पुरुष ऋतुकाल में ही स्त्री का समागम करे और अपनी स्त्री के बिना दूसरी स्त्री का सर्वदा त्याग रक्खे वैसे ही स्त्री भी अपने विवाहित पुरुष को छोड़ के अन्य पुरुषों से सदैव पृथक् रहै जो स्त्रीवृत अर्थात् अपनी विवाहित स्त्री ही से प्रसन्न रहता है जैसे कि पतिवृता स्त्री अपने विवाहितपुरुष को छोड़ दूसरे पुरुष का संग कभी नहीं करती, वह पुरुष, जब ऋतुदान देना हो तब पर्व अर्थात् जो उन ऋतुदान के १६ सोलह दिनों में पौर्णमासी अमावास्या चतुर्दशी वा अष्टमी आवे उस को छोड़ देवे इन में स्त्रीपुरुष रतिक्रिया कभी न करें ॥ १ ॥ स्त्रियों का स्वाभाविक ऋतुकाल १६ सोलह रात्रि का है अर्थात् रजोदर्शन दिन से लेके १६ सोलहवें दिन तक ऋतु समय है उन में प्रथम की चार रात्रि अर्थात् जिस दिन रजस्वला हो उस दिन से ले चार दिन निन्दित हैं प्रथम, द्वितीय तृतीय और चतुर्थ रात्रि में पुरुष स्त्री का स्पर्श और स्त्री पुरुष का सम्बन्ध कभी न करे अर्थात् उस रजस्वला के हाथ का छुआ पानी भी न पीवे न वह स्त्री कुछ काम करे किन्तु एकान्त में बैठी रहै क्योंकि इन चार रात्रियों में समागम करना व्यर्थ और महारोगकारक है ॥ २ ॥ और जैसे प्रथम की चार रात्रि ऋतुदान में निन्दित हैं वैसे ग्यारहवीं और तेरहवीं रात्रि भी निन्दितहैं और बाकी रहीं दश रात्रियां सो ऋतुदान में श्रेष्ठ हैं॥३॥ जिन को पुत्रकी इच्छा हो वे छठी, आठवीं, दशवीं बारहवीं, चौदहवीं, और सोलहवीं, ये छः रात्रियां, ऋतुदान में उत्तम जानें परन्तु इनमें भी उत्तर २ श्रेष्ठ हैं और जिन को कन्या की इच्छा हो, वे पांचवीं, सातवीं, नवीं, और पन्द्रहवीं ये चार रात्रि उत्तम समझें *इस से पुत्रार्थी युग्मरात्रियों में ऋतुदान देवे ॥ ४ ॥ पुरुष के अधिक वीर्य होने से पुत्र और स्त्री के आर्त्तव अधिक होने से कन्या, तुल्य होने से नपुंसकपुरुष वा बन्ध्या स्त्री, क्षीण और अल्पवीर्य से गर्भ का न रहना वा रह कर गिर जाना होता है ॥ ५ ॥ जो पूर्व निन्दित ६ रात्रि हैं तथा अन्य ८ आठ रात्रि हैं उन में जो स्त्री का संग छोड़ देता है वह गृहाश्रम में बसता हुआ भी ब्रह्मचारी ही कहाता है ॥ ६ ॥

उपनिषदि गर्भलम्भनम् ॥आश्व० अ० १ कं० १३ सू० १॥

जैसा उपनिषद् में गर्भस्थापन विधि लिखाहै वैसा करना चाहिये अर्थात् शास्त्रोक्त समय विवाह करके जैसा कि १६ सोलहवें और २५ पच्चीसवें वर्ष विवाह करके ऋतुदान लिखा है वही उपनिषद् से भी विहित है ॥

अथ गर्भाधानँ स्त्रियाः पुष्पवत्याश्चतुरहादूर्ध्वँ स्नात्वा विरजायास्तस्मिन्नेव दिवा "आदित्यं गर्भमिति"॥

यह पारस्कर गृह्यसूत्र का वचन है—ऐसा ही गोभिलीय और शौनकगृह्यसूत्रों में भी विधानहै। स्त्री जब रजस्वला होकर चौथे दिन के उपरान्त पांचवें दिन स्नान कर रजरोग रहित हो उस दिन वा जिस रात्रि में गर्भस्थापन करने की इच्छा हो उस से पूर्व दिन में ( आदित्यं गर्भमिति )† इत्यादि मन्त्रों से सुगन्धादि पदार्थों सहित पूर्व

---

* रात्रिगणना इसलिये की है कि दिन में ऋतुदान का निषेध है ॥

† आगे ये मन्त्र इसी संस्कारमें लिखेहैं ।

सामान्यप्रकरण के लिखित प्रमाणे हवन करके निम्नलिखित मन्त्रों से आहुति देनी चाहिए, यहां पत्नी, पति के वामभाग में बैठे और पति वेदी से पश्चिमाभिमुख, वा पूर्व, दक्षिण, वा उत्तर दिशा में यथाभीष्ट मुख करके बैठे और ऋत्विज् भी चारों दिशाओं में यथासुख बैठें ॥

(१) ओं अग्ने प्रायश्चित्ते त्वं देवानां प्रायश्चित्तिरसि ब्राह्मणस्त्वा नाथकाम उपधावामि याऽस्याःपापी लक्ष्मीस्तनूस्तामस्या अपजहि स्वाहा-इदमग्नये-इदन्नमम १ ओं वायो प्रायश्चित्ते त्वं देवानां प्रायश्चित्तिरसि ब्राह्मणस्त्वा नाथकाम उपधावामि याऽस्याः पापी लक्ष्मीस्तनूस्तामस्या अपजहि स्वाहा । इदं वायवे–इदन्न मम ॥ २ ॥ ओं चन्द्र प्रायश्चित्ते त्वं देवानां प्रायश्चित्तिरसि ब्राह्मणस्त्वा नाथकाम उपधावामि यास्याः पापी लक्ष्मीस्तनूस्तामस्या अपजहि स्वाहा । इदं चन्द्राय इदन्न मम ॥ ३ ॥ ओं सूर्य प्रायश्चित्ते त्वं देवानां प्रायश्चित्तिरसि ब्राह्मणस्त्वा नाथकाम उपधावामि यास्याः पापी लक्ष्मीस्तनूस्तामस्या अपजहि स्वाहा । इदं सूर्याय—इदन्न मम ॥ ४ ॥ ओं अग्निवायुचन्द्रसूर्याः प्रायश्चित्तयो यूयं देवानां प्रायश्चित्तयः स्थ ब्राह्मणो वो नाथकाम उपधावामि यास्याः पापी लक्ष्मीस्तनूस्तामस्या अपहत स्वाहा । इदमग्निवायुचन्द्रसूर्येभ्यः--इदन्न मम॥ ५ ॥ ओं अग्ने प्रायश्चित्ते त्वं देवानां प्रायश्चित्तिरसि ब्राह्मणस्त्वा नाथकाम उपधावामि यास्याः पतिघ्नी तनूस्तामस्या अपजहि स्वाहा । इदमग्नये—इदन्न मम ॥ ६ ॥ ओं वायो प्रायश्चित्ते त्वं देवानां प्रायश्चित्तिरसि ब्राह्मणस्त्वा नाथकाम उपधावामि यास्याः पतिघ्नी तनूस्तामस्या अपजहि स्वाहा । इदं वायवे–इदन्न मम ॥ ७ ॥ ओं चन्द्र प्रायश्चित्ते त्वं देवानां प्रायश्चित्तिरसि ब्राह्मणस्त्वा नाथकाम उपधावामि यास्याः पतिघ्नी तनूस्तामस्या अपजहि स्वाहा । इदं चन्द्राय–इदन्न मम ॥ ८ ॥ ओं सूर्य्य प्रायश्चित्ते त्वं देवानां प्रायश्चित्तिरसि ब्राह्मणस्त्वा नाथकाम उपधावामि यास्याः पतिघ्नी तनूस्तामस्या अपजहि स्वाहा । इदं सूर्याय-इदन्न मम ॥ ९ ॥ ओं अग्निवायुचन्द्रसूर्याः प्रायश्चित्तयो यूयं देवानां प्रायश्चित्तयः स्थ ब्राह्मणो वो नाथकाम उपधावामि यास्याः पतिघ्नी तनूस्तामस्या अपहत स्वाहा ।इदमग्निवायुचन्द्रसूर्य्येभ्य इदन्न मम ॥ १० ॥ ओं अग्ने प्रायश्चित्ते त्वं देवानां प्रायश्चित्तिरसि ब्राह्मणस्त्वा नाथकाम उपधावामि यास्या अपुत्र्यास्तनूस्तामस्या अपजहि स्वाहा । इदं वायवे

---

( १ ) सामवेद मन्त्र ब्रा०प्र० १ ख० ४ म०१–५। तथा पारस्कर गृ० सू०का० १ क० ११ सू० २। इन्हीं मन्त्रों की आहुति दी गई है, गदाधरभाष्य में इस स्थान पर कई अशुद्धवातें गर्भाधान विषय में लिखी हैं ॥

इदन्न मम ॥ ११ ॥ ओं वायो प्रायश्चित्ते त्वं देवानां प्रायश्चित्तिरसि ब्राह्मणस्त्वा नाथकाम उपधावामि यास्या अपुत्र्यास्तनूस्तामस्या अपजहि स्वाहा। इदमग्नये-इदन्न मम ॥ १२ ॥ ओं चन्द्र प्रायश्चित्ते त्वं देवानां प्रायश्चित्तिरसि ब्राह्मणस्त्वा नाथकाम उपधावामि यास्या अपुत्र्यास्तनूस्तामस्या अपजहि स्वाहा । इदं चन्द्राय इदन्न मम ॥१३॥ ओं सूर्य प्रायश्चित्ते त्वं देवानां प्रायश्चित्तिरसि ब्राह्मणस्त्वा नाथकाम उपधावामि यास्या अपुत्र्यास्तनूस्तामस्या अपजहि स्वाहा । इदं सूर्याय–इदन्न मम ॥१४॥ ओं अग्निवायुचन्द्रसूर्याः प्रायश्चित्तयो यूयं देवानां प्रायश्चित्तयःस्थ ब्राह्मणो वो नाथकाम उपधावामि यास्या अपुत्र्यास्तनूस्तामस्या अपहत स्वाहा । इदमग्निवायुचन्द्रसूर्येभ्य इदन्न मम ॥१५॥ ओं अग्ने प्रायश्चित्ते त्वं देवानां प्रायश्चित्तिरसि ब्राह्मणस्त्वा नाथकाम उपधावामि यास्या अपशव्या तनूस्तामस्या अपजहि स्वाहा ।इदमग्नये इदन्न मम ॥१६॥ ओं वायो प्रायश्चित्ते त्वं देवानां प्रायश्चित्तिरसि ब्राह्मणस्त्वा नाथकाम उपधावामि यास्या अपशव्या-तनूस्तामस्या अपजहि स्वाहा । इदं वायवे—इदन्न मम ॥१७॥ ओं चन्द्र प्रायश्चित्ते त्वं देवानां प्रायश्चित्तिरसि ब्राह्मणस्त्वा नाथकाम उपधावामि यास्या अपशव्या तनूस्तामस्या अपजहि स्वाहा । इदं चन्द्राय–इदन्न मम ॥१८॥ ओं सूर्य प्रायश्चित्ते त्वं देवानां प्रायश्चित्तिरसि ब्राह्मणस्त्वा नाथकाम् उपधावामि यास्या अपशव्या तनूस्तामस्या अपजहि स्वाहा । इदं सूर्याय–इदन्न मम ॥१९॥ ओं अग्निवायुचन्द्रसूर्याः प्रायश्चित्तयो यूयं देवानां प्रायश्चित्तयः स्थ ब्राह्मणो वो नाथकाम उपधावामि यास्या अपशव्या तनूस्तामस्या अपहत स्वाहा । इदमग्निवायुचन्द्रसूर्येभ्य इदन्न मम ॥२०॥

इन बीस मन्त्रों से बीस आहुति देनी * । और बीस आहुति करने से यत्किंचित् घृत बचे वह कांसे के पात्र में ढांक के रख देवे इस के पश्चात् भात की आहुति देने के लिये यह विधि करना अर्थात् एक चाँदी वा काँसे के पात्र में भात रख के उसमें घी दूध और शक्कर मिला के कुछ थोड़ी देर रख के जब घृत आदि भात में एक रस हो जाय पश्चात् नीचे लिखे एक २ मन्त्र से एक २ आहुति अग्नि में देवे और स्रुवा में का शेष, आगे धरे हुए कांसे के उदकपात्र में छोड़ता जावे ॥

---

* इन बीस आहुति देते समय वधू अपने दक्षिण हाथ से वर के दक्षिण स्कंध पर स्पर्श कर रक्खे ॥ अग्निमुपसमाधाय प्रायश्चित्ताज्याहुती र्जुहोति "अग्ने प्रायश्चित्ते„ इति चतुः। गोभि० गृ० सू० प्र० २ का० ५ सू० २। यहां "चतुः„ शब्द वीप्सित है और मन्त्र भी वीप्सित है। एवं २० आहुतियाँ होजाती हैं। यह बात चन्द्रकान्त तर्कालङ्कारके गोभि० गृ० सूत्रभाष्य में स्पष्ट है ॥

(१) ओं अग्नये पवमानाय स्वाहा । इदमग्नये पवमानाय—इदन्न मम ॥ १॥ ओं अग्नये पावकाय स्वाहा ॥ इदमग्नये पावकाय—इदन्न मम ॥२॥ ओं अग्नये शुचये स्वाहा ॥ इदमग्नये शुचये—इदन्न मम ॥३॥ ओं अदित्यै स्वाहा । इदमदित्यै—इदन्न मम ॥४॥ ओं प्रजापतये स्वाहा । इदं प्रजापतये—इदन्न मम॥५॥ ओ २ यदस्य कर्मणोऽत्यरीरिचं यद्वा न्यूनमिहाकरम् । अग्निष्टत्स्विष्टकृद्विद्यात्सर्वं स्विष्टं सुहुतं करोतु मे । अग्नये स्विष्टकृते सुहुतहुते सर्वप्रायश्चित्ताहुतीनां कामानां समर्धयित्रे सर्वान्नः कामान्त्समर्धय स्वाहा ॥ इदमग्नये स्विष्टकृते—इदन्नमम ॥६

इन छः मन्त्रों से उस भात की आहुति देवे तत्पश्चात् पूर्व सामान्यप्रकरणोक्त आठ मन्त्रों से अष्टाज्याहुति देवे तथा निम्नलिखित मन्त्रों से भी आज्याहुति देवे ॥

विष्णुर्योनिं कल्पयतु त्वष्टा रूपाणि पिंशतु । आसिञ्चतु प्रजापतिर्धाता गर्भं दधातु ते स्वाहा ॥१॥ गर्भं धेहि सिनीवालि गर्भं धेहि सरस्वति । गर्भं ते अश्विनौ देवावाधत्तां पुष्करस्रजा स्वाहा ॥ २ ॥ हिरण्ययी अरणी यं निर्मन्थतो अश्विना । तं ते गर्भं हवामहे दशमे मासि सूतवे स्वाहा ॥३॥ ऋ० मं० १० । सू०१८४ । मं० १–३ ।

रेतो मूत्रं विजहाति योनिंप्रविशदिन्द्रियम् । गर्भो जरायुणावृत उल्वं जहाति जन्मना ॥ ऋतेन सत्यमिन्द्रियं विपानँ शुक्रमन्धस इन्द्रस्येन्द्रियमिदं पयोऽमृतं मधु स्वाहा ॥४॥ यत्ते सुसीमे हृदयं दिवि चन्द्रमसि श्रितम् । वेदाहं तन्मां तद्विद्यात् (पार० का० १ क०११ सू०६) पश्येम शरदः शतं जीवेम शरदः शतँ शृणुयाम शरदः शतं प्रब्रवाम शरदः शतमदीनाःस्याम शरदः शतं भूयश्च शरदः शतात् स्वाहा ॥५॥ यजुर्वेदे अ० ३६ म०२४ ॥

यथेयं पृथिवी मही भूतानां गर्भमादधे ॥ एवा ते ध्रियतां गर्भोऽअनुसूतुं सवितवे स्वाहा॥६॥यथेयं पृथिवी मही दाधारेमान् वनस्पतीन्॥एवा ते ध्रियतां गर्भो अनुसूतुं सवितवे स्वाहा॥७॥यथेयं पृथिवी मही दाधार पर्वतान् गिरीन् । एवा ते ध्रियतां गर्भोऽअनुसूतुं सवितवे स्वाहा ॥८॥ यथेयं पृथिवी मही दाधार विष्ठितं जगत् एवा ते ध्रियतां गर्भो अनुसूतुं सवितवे स्वाहा॥९॥ अथर्व० कां० ६ । सू० १७ ॥

इन ९ मन्त्रों से नव आज्य और मोहन भोग की आहुति दे के नीचे लिखे मन्त्रों से भी चार घृताहुति देवे ॥

---

(१) कातीय श्रौतसूत्र ६ क०५ तथा पारस्करगृ० का०१ क०२ सू०७ हरिहरभाष्ये ऽप्येवम् ।

(२) इस का अर्थ पूर्व सामान्यप्रकरण में लिख दिया ।

ओं भूरग्नये स्वाहा। इदमग्नये इदन्न मम ॥१॥ ओं भुववायवे स्वाहा। इदं वायवे इदन्न मम ॥२॥ ओं स्वरादित्याय स्वाहा। इदमादित्याय इदन्न मम ॥३॥ ओम् अग्निवाय्वादित्येभ्यः प्राणापानव्यानेभ्यः स्वाहा। इदमग्निवायवादित्येभ्यः प्राणापानव्यानेभ्यः इदन्न मम ॥४॥

पश्चात् नीचे लिखे मन्त्रों से भी घृत की दो आहुति देनी ॥

ओम् अयास्यग्नेर्वषट्कृतं यत्कर्मणोऽत्यरीरिचं देवा गातुविदः स्वाहा। इदं देवेभ्यो गातुविद्भ्यः इदन्न मम ॥१॥ ओं प्रजापतये स्वाहा। इदं प्रजापतये इदन्न मम ॥२॥

इन आहुतियों के पश्चात् सामान्य प्रकरणोक्त "ओं यदस्य कर्मणोऽत्यरीरिचं०„ इस मन्त्र से एक स्विष्टकृत् आहुति घृत की देवे इन मंत्रों से आहुति देते समय प्रत्येक आहुति के स्रुवा में शेष रहे घृत को आगे धरे हुए काँसेके उदक पात्र में इकट्ठा करते जावें जब आहुति हो चुके तब उन आहुतियों के शेष घृत को वधू लेके स्नान के घर में जाकर उस घी का पग के नखसे लेके शिर पर्य्यन्त सब अंगों पर मर्दन करके स्नान करे। तत्पश्चात् शुद्धवस्त्र से शरीर पोंछ शुद्धवस्त्र धारणकरके कुण्ड के समीप आवे तब दोनों वधूवर कुण्डकी प्रदक्षिणा करके सूर्य्य का दर्शन कर, उस समय--

ओं आदित्यं गर्भं पयसा समङ्ग्धि सहस्रस्य प्रतिमां विश्वरूपम्। परिवृङ्ग्धि हरसा माभिमᳫंस्था शतायुषं कृणुहि चीयमानः ॥ १॥ य० अ० १३ म० ४१ सूर्यो नो दिवस्पातु वातो अन्तरिक्षात्। अग्निर्नः पार्थिवेभ्यः ॥ २ ॥ जोषा सवितर्यस्य ते हरः शतं सवां अर्हति। पाहि नो दिद्युतः पतन्त्याः ॥३॥ चक्षुर्नो देवः सविता चक्षुर्न उत पर्वतः। चक्षुर्धाता दधातु नः ॥४॥ चक्षुर्नो धेहि चक्षुषे चक्षुर्विख्यै तनूभ्यः। सं चेदं वि च पश्येम ॥५॥ सुसंदृशं त्वा वयं प्रतिपश्येम सूर्य। विपश्येम नृचक्षसः ॥६॥ ऋ० मं० १० अ० १२ सूक्त १५८ म० १—५ ॥

इन मन्त्रों से परमेश्वर का उपस्थान करके वधू —

ओं ( अमुक (१) गोत्रा, शुभदा, अमुकनाम्नी (२) अहं भो भवन्तमभिवादयामि )

ऐसा वाक्य बोल के अपने पति को वन्दन अर्थात् नमस्कार करे तत्पश्चात् स्वपति के पिता पितामहादि और जो वहां अन्य माननीय पुरुष तथा पति की माता तथा अन्य कुटुम्बी और सम्बन्धियों की वृद्ध स्त्रियां हों उन को भी इसी प्रकार वन्दन करे इस प्रमाणे वधू वर के गोत्र की हुए अर्थात् वधू पत्नीत्व और वर पतित्व को प्राप्त हुए पश्चात्

(१) इस ठिकाने वर के गोत्र अथवा वर के कुल का नामोच्चारण करे।

(२) इस ठिकाने वधू अपना नाम उच्चारण करे।

दोनों पति पत्नी शुभासन पर पूर्वाभिमुख वेदी के पश्चिम भाग में बैठ के वामदेव्यगान करें तत्पश्चात् यथाशास्त्रोक्त (१) भोजन दोनों जने करें और पुरोहितादि सब मण्डली को सन्मानार्थ यथाशक्ति भोजन करा के आदरपूर्वक सब को विदा करें ॥

इस के पश्चात् रात्रि में नियत समय पर जब दोनों का शरीर आरोग्य, अत्यन्त प्रसन्न और दोनों में अत्यन्त प्रेम बढ़ा हो, उस समय गर्भाधान क्रिया करनी, गर्भाधान क्रिया का समय प्रहररात्री के गये पश्चात् प्रहररात्री रहे तक है। जब वीर्य के गर्भाशय में जाने का समय आवे तब दोनों स्थिरशरीर, प्रसन्नवदन, * मुख के सामने मुख, नासिका के सामने नासिकादि, सब सूधा शरीर रक्खें। वीर्य का प्रक्षेप पुरुष करे जब वीर्य स्त्री के शरीर में प्राप्त हो उस समय अपना पायु मूलेन्द्रिय और योनीन्द्रियको ऊपर संकोच और वीर्य को खेंच कर स्त्री गर्भाशय में स्थित करे तत्पश्चात् थोड़ा ठहर के स्नान करे यदि शीतकाल हो तो प्रथम केशर, कस्तूरी, जायफर, जावित्री, छोटी इलायची, डाल गर्म कर रक्खे हुए शीतल दूध का यथेष्ट पान करके पश्चात् पृथक् २ शयन करें यदि स्त्रीपुरुष को ऐसा दृढ़ निश्चय हो जाय कि गर्भ स्थिर हो गया, तो उस के दूसरे दिन और जो गर्भ रहे का दृढ़ निश्चय न हो तो एक

---

(१) उत्तम सन्तान करने का मुख्य हेतु यथोक्त, पथ्य वर के आहार पर निर्भर है इस लिये पति पत्नी अपने शरीर आत्मा की पुष्टि के लिये बल और बुद्धि आदि की वर्द्धक सर्वौषधि का सेवन करें। सर्वौषधि ये हैं—दो खण्ड आँबाहल्दी, दूसरी खाने की हल्दी "चन्दन,, मुरा ( यह नाम दक्षिण में प्रसिद्ध है ) कुष्ट जटामांसी, मोरवेल ( यह भी नाम दक्षिण में प्रसिद्ध है ) सिलाजीत, कपूर, मुस्ता, भद्रमोथ, इन सब ओषधियों का चूर्ण करके सब सम भाग लेके उदुम्बर के काष्ठ के पात्र में गाय के दूध के साथ मिला उनका दही जमा और उदुम्बर ही के लकड़े की मंथनी से मंथन करके उस में से मक्खन निकाल उस को ताय, घृत करके उसमें सुगंधित द्रव्य केशर कस्तूरी, जायफल इलायची, जावित्री, मिला के अर्थात् सेर भर दूध में छटांक भर पूर्वोक्त सर्वौषधि मिला सिद्ध कर घी हुए पश्चात् एक सेर में एक रत्ती कस्तूरी और एक मासा केशर और एक २ मासा जायफलादि भी मिला के नित्य प्रातःकाल उस घी में से सामान्यप्रकरणोक्त आघारावाज्यभागाहुति ४ चार और इसी संस्कार में पृ०६ में लिखे [विष्णु र्योनिं० ] इत्यादि ७ सात मन्त्रों के अन्त में स्वाहाशब्द उच्चारण करके जिस रात्रि में गर्भस्थापन क्रिया करनी हो उस के दिन में होम करके उसी अवशिष्ट घी को दोनों जने खीर अथवा भात के साथ मिला के यथारुचि भोजन करें इस प्रकार गर्भ स्थापन करे तो सुशील, विद्वान्, दीर्घायु, तेजस्वी, सुदृढ़ और नीरोग पुत्र उत्पन्न होवे यदि कन्या की इच्छा हो तो जल में चावल पका पूर्वोक्त प्रकार घृत, गूलर के पात्रमें जमाये हुए दही के साथ भोजन करने से उत्तमगुणयुक्त कन्या होवे "आहारशुद्धौ सत्त्वशुद्धिः सत्वशुद्धौ ध्रुवा स्मृतिः,, छान्दोग्योप० अ०७ ख० २६ म० २।

* अथ यामिच्छेत्—गर्भं दधीतेति तस्यामर्थं निष्ठाप्य मुखेन मुखँ संधायापान्याभिप्राण्यादिन्द्रियेण रेतसा ते रेत आदधामीति गर्भिण्येव भवति। शतपथब्रा० का० १४ अ० ६ ब्रा०७ आ० ४ क० १०॥

महीने के पश्चात् रजस्वला होने के समय ( स्त्री रजस्वला न हो तो निश्चित जानना कि गर्भ स्थित हो गया है ) अर्थात् दूसरे दिन वा दूसरे महीने के आरम्भ में निम्नलिखित मन्त्रों से आहुति देवे *

यथा वातः पुष्करिणीं समिङ्गयति सर्वतः । एवा ते गर्भ एजतु निरैतु दशमास्यः स्वाहा ॥ १ ॥ यथा वातो यथा वनं यथा समुद्र एजति । एवा त्वं दशमास्य सहावेहि जरायुणा स्वाहा ॥२॥ दशमासाञ्छशयानः कुमारो अधि मातरि । निरैतु जीवो अक्षतो जीवो जीवन्त्या अधि स्वाहा ॥३॥ ऋ० मं० ५ सू० ७८ मं० ७ । ८ । ९ । ॥

एजतु दशमास्यो गर्भो जरायुणा सह । यथायं वायु रेजति यथा समुद्र एजति । एवायं दशमास्यो अस्रज्जरायुणा सह स्वाहा ॥१॥ यस्यै ते यज्ञियो गर्भो यस्यै योनिर्हिरण्ययी । अङ्गान्यह्रुता यस्य तं मात्रा समजीगमँ स्वाहा ॥२॥ यजुः० अ० ८ । मं० २८ । २९ ॥

पुमाँसौ मित्रावरुणौ पुमाँसावश्विनावुभौ । पुमानग्निश्च वायुश्च पुमान् गर्भस्तवोदरे स्वाहा ॥१॥ पुमानग्निः पुमानिन्द्रः पुमान्देवो बृहस्पतिः । पुमाँसं पुत्रं विन्दस्व तं पुमाननु जायतां स्वाहा ॥२॥ सा० वे० मन्त्र ब्रा० प्र० १ खं० ४ मं० ८–९ ।

---

आठवें पृष्ठ का नोट (१) का शेषांश—

१ अर्थात् शुद्ध आहार मद्यमांसादि रहित, घृत दुग्धादि चावल गेहूं आदि के करने से अंतःकरण की शुद्धि, बल, पुरुषार्थ, आरोग्य और बुद्धि की प्राप्ति होती है इसलिये पूर्ण युवावस्था में विवाह कर इस प्रकार विधि से प्रेमपूर्वक गर्भाधान करें तो सन्तान और कुल, नित्यप्रति अत्युत्तम को प्राप्त होता जाय। जब रजस्वला होने के समय में १२—१३ दिन शेष रहें तब शुक्लपक्ष में १२ दिन तक पूर्वोक्त घृत मिला के इसी खीर का भोजन करके १२ दिन का व्रत भी करें और मिताहारी होकर ऋतु समय में पूर्वोक्त रीति से गर्भाधान क्रिया करें तो अत्युत्तम संतान होवे, जैसे सब पदार्थों की उत्कृष्ट करने की विद्या है वैसे संतान को उत्कृष्ट करने की यही विद्या है इस पर मनुष्य लोग बहुत ध्यान देवें क्योंकि इसके न होने से कुल की हानि और नीचता और होने से कुल की वृद्धि और उत्तमता अवश्य होती है ॥

* यदि दो ऋतुकाल व्यर्थ जायँ अर्थात् दो बार दो महीनों में गर्भाधान क्रिया निष्फल हो जाय गर्भस्थिति न होवे तो तीसरे महीने में ऋतुकाल समय जब आवे तब पुष्यनक्षत्रयुक्त दिवस में प्रथम प्रातःकाल उपस्थित होवे, तब प्रथम प्रसूता गाय का दही दो मासा

इन मन्त्रों से आहुति देकर पूर्व लिखित सामान्यप्रकरण की शान्त्याहुति दे के पूर्णाहुति देवे पुनः स्त्री के, भोजन छादन का सुनियम करे। कोई मादक, मद्य आदि रेचक हरीतकी आदि, क्षार अतिलवणादि, अत्यम्ल अर्थात् अधिक खटाई, रूक्षचणे आदि, तीक्ष्ण अधिक लालमिर्चा आदि स्त्री कभी न खावे किन्तु घृत, दुग्ध, मिष्ट, सोमलता, अर्थात् गुडूच्यादि ओषधि, चावल, मिष्ट, दधि, गेहूं उर्द, मूंग तुअर आदि अन्न और पुष्टिकारक शाक खावे, उस में ऋतु २ के मसाले, गर्मी में ठण्डे सफेद इलायची आदि और शरदी में केशर कस्तूरी आदि डाल कर खाया करे। युक्तआहारविहार सदा किया करे। दधि में शुंठी और ब्राह्मी ओषधि का सेवन, स्त्री, विशेष किया करे जिस से सन्तान अतिबुद्धिमान् रोगरहित, शुभगुण कर्म स्वभाव वाला होवे ॥

इति गर्भाधानविधिः॥

और यव के दाणों को सेक के पीस के दो मासा ले के इन दोनों को एकत्र करके पत्नी के हाथ में दे के उस से पति पूछे"किं पिबसि" इस प्रकार तीन वार पूछे और स्त्री भी अपने पति को "पुंसवनम्" इस वाक्य को तीन वार बोल के उत्तर देवे और उस का प्राशन करे इसी रीति से पुनः पुनः तीन वार विधि करना तत्पश्चात् सङ्ख्याहूली व भटकटाई औषधि को जल में महीन पीस के उस का रस कपड़े में छान के पति, पत्नी के दाहिने नाक के छिद्र में सिंचन करे और पति —

ओ३म् इयमोषधी त्रायमाणा सहमाना सरस्वती ॥

अस्या अहं बृहत्याः पुत्रः पितुरिव नाम जग्रभम् ॥ पार० कां०१ कं० १३ स० १ ॥

इस मन्त्र से जगन्नियन्ता परमात्मा की प्रार्थना करके यथोक्त ऋतुदान विधि करे, यह सूत्रकार का मत है ॥

( त्रायमाणा ) प्रयोगकरने वालों की रक्षा करने वाली ( सहमाना ) दोषों को सहन करके भी नाश करने वाली और ( सरस्वती ) अपने कारणरूप जल से सम्बन्ध रखने वाली ( इयम् ) यह ओषधि, दोषों को जलानेवाली दवा है ( अस्याः ) इस( बृहत्याः ) पुत्रादि देकर बढ़ाने वाली के ( प्रभाव से ) ( अहंपुत्रः ) मैं पुत्र (इव) जैसे (पितुर्नाम ) पिता के नामको ( जग्रभम् ) गहण कर चुका हूं, "वैसेही यह पैदा होने वाला पुत्र "मैं इसका पुत्र हूं" इस प्रकार मेरे नाम को प्रसिद्ध करे,, ॥

[ परिशिष्ट ] पृ० ३ में " अथ गर्भाधानम् ,, इत्यादि पारस्कर गृ० सू० का वचन लिखा है परन्तु, हमें अनेक पार० गृ० सू० देखने परभी इसका पता नहीं लगा इस विषयमें आर्यसिद्धान्तों के मर्म्मज्ञ बहुश्रुत श्री नारायण दलपतभक्त छोटा उदयपुर ने लिखा है कि यह वचन मैंने अहमदाबाद की लाइब्रेरी में रक्खी हुई पार० गृ० सू० की पुस्तकमें देखा है, वह पुस्तक ज्येष्ठाराम मुकन्दजी मुम्बई ने पूर्व छपाई थी ।